संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

हिन्दी

वर्ष : ११
अंक : ९६
दिसम्बर २०००

"रूपये-पैसे, चेक-ड्राफ्ट भेजना नहीं। कर-कसर से सभी सेवाएँ हो जाती हैं।"

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

वर्ष : ११
अंक : ९६
९ दिसम्बर २०००

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 25
(२) पंचवार्षिक : US $ 100
(३) आजीवन : US $ 250

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

गुरुभक्ति है जीवन का सार

गुरुजी खोलो दया के द्वार, तुम्हारा हो जाये दीदार।
हमारा जगाओ विवेक-विचार, हमको ले जाओ भवपार॥
गुरु की महिमा अपरंपार, गुरुभक्ति है जीवन का सार।
यहाँ का नश्वर है संसार, हमारा कर लो अंगीकार॥
क्यों गवाएँ जीवन बेकार, सहज में होता है उद्धार।
साध लो गुरुकृपा का प्यार, नहीं तो पड़ेगी यम की मार॥
दुनिया है इक बाजार, हर शख्स यहाँ बेजार।
अरे ! आओ गुरु के द्वार, गुरुजी सबको लेंगे उबार॥
गुरुवर एक तुम्हीं आधार, तुम तो जीवन्मुक्त साहूकार।
भक्ति का दे दो कर्जा उधार, उतारो युगों-युगों का भार॥
बजाओ ताल ध्रुपद-धमार, गुरु ने किया हमें स्वीकार।
हमें हुआ आनंद अपार, गुरु से जुड़ी हमारी तार॥
गुरु हैं ईश्वर गुरु परमेश्वर, रटन हो गुरुनाम हर जुबाँ पर।
पहुँचे गुरुज्ञान यह घर-घर, इसमें डूबने का दो अवसर॥

- प्रदीप काशीकर, अमदावाद।

*

'ऋषि प्रसाद' पढ़े चलो...

'ऋषि प्रसाद' पढ़े चलो, इसके पदचिन्हों पर बढ़े चलो।
भला होता है इससे देश का, प्रचार इसका किये चलो।
बापूजी के साथ मिलके, परमात्मा को पहचान लो।
पत्रिका है जीवन-दर्शन, ठीक से यह जान लो॥
भूलकर भी मुख से कभी, निरादर की न बात हो।
धर्मान्तरण के लिये कभी, हिन्दू न कोई तैयार हो।
अज्ञान का भरा घड़ा है, फोड़कर बढ़े चलो॥
पत्रिका है जीवन-दर्शन...
आ रही है आज, चारों ओर से यही पुकार।
हम करेंगे त्याग यारों! गुरुदेव के लिये अपार।
कष्ट जो मिलेंगे हमको, मिलके सब सहेंगे हम॥
पत्रिका है जीवन-दर्शन...

- प्रकाश वीर विद्यार्थी, बदायूँ (उ. प्र.).

*

'ऋषि प्रसाद' की महिमा भारी...

'ऋषि प्रसाद' की महिमा भारी, सुन लीजो तुम अरज हमारी।
मिटे कष्ट-क्लेश दुःख भारी, सुखी होवे सब प्रजा हमारी॥
गुरुसेवा से ज्ञान पावो, प्रभुचरणों को मन में बसाओ।
मात-पिता की सेवा करो, जीवन अपना सफल बनाओ॥
गुरुज्ञान का अमृत बरसे, जिसे पाने को मन तरसे।
मत जाओ खाली गुरु दर से, विनती है सबको दो कर से॥
युवा जागृति का संदेश सुनावे, मौन रहने की महिमा बतावे।
शरीर-स्वास्थ्य का ज्ञान बतावे, जिससे जीवन सफल हो जावे॥

- कैलासचन्द्र राठौर, रतलाम (म. प्र.).

*

युवाधन सुरक्षा अभियान

ब्रह्मचर्य का ले अवलंबन, निज महिमा में जागो,
सुखस्वरूप तुम खुद हो, मत भीख जगत से माँगो।
पाकर श्रेय आत्म-शासन का, बनो देश का जीवन प्राण,
चिर इच्छित भारत के तुम, बन जाओ गौरवमय अरमान॥
अटल अलौकिक भाव तुम्हारे, जग में क्रान्ति मचायें महान्,
पुनः विश्वगुरु के पद पर, स्थिर हो भारत देश महान्।
भर भण्डार ज्ञान का जग में, करो दूर तमसान्धकार,
हर क्षण का कर सदुपयोग तुम, जग को दो जीवन का सार॥
तोड़ मोह का पाश जगत हित, कर दो निज जीवन का दान,
मुक्त कण्ठ से बोल उठें सब, ये मेरे भारत की शान।
भूले भटकों को राह दिखा, दीनों को गले लगाओ,
भक्तों का उद्धार करो तुम, जन जन को अपनाओ॥
हो कल्याण राह पर चलकर, तुम ऐसी राह बनाओ।
बनकर अजर अमर शाश्वत्, इस जगती पर छा जाओ॥

अष्टावक्रजी महाराज राजा जनक के दरबार में

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

राजा जनक के समय में उद्दालक नाम के एक ऋषि हो गये। उनके एक सत्‌शिष्य थे जिनका नाम कहोड़ मुनि था। कहोड़ मुनि की चित्तवृत्ति गुरु के चरणों में लगी रहती थी। संसार में उन्हें आसक्ति नहीं थी। उद्दालक ऋषि से उन्होंने वेदों का ज्ञान और ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी। वेदों के अध्ययन-अध्यापन व मनन में ही वे निमग्न रहते थे।

कहोड़ मुनि का सदाचरण देखकर उद्दालक ऋषि को हुआ कि : 'मैं अपनी पुत्री का हाथ अपने इस सत्‌शिष्य के हाथ में सौंप दूँ।' उन्होंने अपनी पुत्री सुजाता की शादी कहोड़ मुनि के साथ कर भी दी। कहोड़ मुनि हमेशा की तरह वेदाध्ययन-अध्यापन करते और पत्नी को भी वेद की ऋचाएँ सुनाते। समय बीतता गया। पत्नी गर्भवती हुई। एक बार कहोड़ मुनि अपनी पत्नी को वेद की ऋचाएँ सुना रहे थे, तभी माँ के उदर में पल रहा बालक बोल उठा :

''ऋषिवर ! आप वेद की जिन ऋचाओं का पाठ कर रहे हैं उनमें गलतियाँ हो रही हैं।''

कहोड़ मुनि को आश्चर्य हुआ कि : 'गर्भ में से यह मेरा पुत्र बोल रहा है ! अभी तो माँ के उदर में रहते इसको आठ महीने ही हुए हैं और मेरी गलतियाँ बताता है !' उन्होंने क्रुद्ध होकर उसे शाप दे दिया :

''जा, तेरे शरीर में आठ बाँक होंगे।''

कहोड़ मुनि वेद की ऋचाओं का पठन-पाठन करते-कराते थे लेकिन उनका मन अभी स्थिर नहीं हुआ था इसलिए अपनी गलती कबूल करने में उनके अहं को ठेस पहुँची और उदरस्थ शिशु को शाप दे दिया।

दूसरी ओर वरुणलोक में वरुणजी को ज्ञानयज्ञ कराने की इच्छा हुई। इस हेतु श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणों की जरूरत थी। ऐसे श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण जनकपुरी में ही मिल सकते थे। इसलिए वरुण ने अपने पुत्र बंदी को राजा जनक के दरबार में शास्त्रार्थ करने के लिए भेजा और कहा :

''तुम्हारे साथ शास्त्रार्थ करने में जो भी विद्वान् हार जायें, उनको तू समुद्र में डुबो देना। वहाँ से अपने अनुचर उनको यहाँ ले आयेंगे। इससे अपना ज्ञानयज्ञ चालू रहेगा।''

इस कार्य के लिये वरुण का पुत्र बंदी राजा जनक के दरबार में पहुँचा।

उधर सुजाता की प्रसूति के दिन करीब आ रहे थे, उसने अपने पति से कहा :

''अपने यहाँ बालक का जन्म होनेवाला है और घर में गृहस्थी चलाने के लिए आवश्यक सामग्री नहीं है। अगर आप राजा जनक के दरबार में जायें तो कुछ व्यवस्था हो सकती है।''

कहोड़ मुनि राजा जनक के दरबार में शास्त्रार्थ करने गये। वरुणदेव के पुत्र बंदी ने शास्त्रार्थ में अद्‌भुत तरीके से विविध प्रश्न करके कहोड़ मुनि को हरा दिया। शास्त्रार्थ में यह शर्त थी कि : 'जो ब्राह्मण हार जाय उसे समुद्र में डुबो दिया जाए।' उस शर्त के अनुसार कई ब्राह्मणों को समुद्र में डुबो दिया गया था, अतः कहोड़ मुनि को भी डुबो दिया गया। वहाँ से उन्हें वरुणदेव के दूत वरुणलोक में ले गये।

उसके बाद अष्टावक्रजी का जन्म हुआ। उद्दालक ऋषि को कहोड़ मुनि के साथ घटित घटना का समाचार मिला। उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने अपनी पुत्री सुजाता से कहा :

''अगर अष्टावक्र को इस बात का पता चल गया कि उसके पिताजी को किसीने मार डाला है तो उसे बहुत दुःख होगा। अतः कुछ भी हो, अष्टावक्र को यह भेद मत बताना। उससे यही कहना कि उद्दालक ऋषि ही तेरे पिता हैं।''

इस तरह अष्टावक्रजी उद्दालक ऋषि को ही अपना पिता और उनके पुत्र श्वेतकेतु को अपना

भाई मानने लगे । समय बीतता गया और अष्टावक्रजी करीब बारह साल के हुए।

जैसे उत्तानपाद राजा की गोद में उत्तम बैठा था और ध्रुव बैठने गया तब उत्तम की माँ ने ताना मारा था, उसी तरह एक बार अष्टावक्रजी उद्दालक ऋषि की गोद में बैठे थे तब श्वेतकेतु ने आकर कहा : ''जा, तू अपने पिता की गोद में बैठ। ये तेरे पिताजी नहीं हैं, ये मेरे पिताजी हैं।''

यह सुनकर अष्टावक्रजी को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपनी माँ से इस बात का रहस्य जानने के लिए पूछा : ''मेरे पिता कौन हैं ? मुझे सच बताओ।''

माँ : ''पुत्र ! तेरे पिताजी राजा जनक के दरबार में शास्त्रार्थ करने गये थे । वहाँ शास्त्रार्थ में वे बंदी नाम के एक विद्वान् पंडित से हार गये अतः उन्हें समुद्र में डुबो दिया गया।''

अष्टावक्रजी : ''माँ ! राजा जनक के दरबार में मेरे पिताजी की हत्या हुई है ? मैं राजा जनक के दरबार में जाऊँगा और उस पंडित को हराकर आऊँगा।''

माँ ने अष्टावक्रजी को खूब समझाया किन्तु वे न माने । उन्हीं दिनों राजा जनक के दरबार में एक अद्‌भुत यज्ञ का पुनः आयोजन किया गया जिसमें भाग लेने के लिए अष्टावक्रजी निकल पड़े। मार्ग में ही राजा जनक से उनकी भेंट हो गई। राजा जनक घोड़े पर सवार थे। अष्टावक्रजी को देखकर उन्होंने कहा :

''दूर हटो, रास्ता दो।''

अष्टावक्रजी ने कहा : ''महाशय ! पहले आप मेरी बात सुनें। कोई बहरा या अंधा रास्ते से जाता हो, कोई स्त्री या सिर पर बोझा उठाये कोई व्यक्ति जाता हो तो प्रथम उसे रास्ता देना चाहिए । यदि राजा और ब्राह्मण रास्ते में आमने-सामने पड़ जायँ तो राजा को बगल हो जाना चाहिए और ब्राह्मण को रास्ता दे देना चाहिए। इसको धर्म कहते हैं।''

राजा जनक ने मार्ग दिया और अष्टावक्रजी उनके दरबार में पहुँचे । वहाँ उन्होंने द्वारपाल से विनती की : ''मुझे यज्ञशाला में जाने दीजिए। मुझे बंदी से शास्त्रार्थ करना है।''

द्वारपाल : ''बालक ! यहाँ अच्छे-अच्छे विद्वान् ब्राह्मणों की भी परीक्षा लेकर ही उन्हें दरबार में प्रवेश दिया जाता है। तू तो अभी बालक है। तुझे दरबार में प्रवेश नहीं मिलेगा।''

यह सुनकर अष्टावक्रजी ने कहा :

न तेन स्थविरो भवति येनास्य पलितं शिरः।
बालोऽपि यः प्रजानाति तं देवा स्थविरं विदुः॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मे योऽनूचानः स नो महान्॥

(महाभारत- वनपर्व : १३३.११,१२)

'तुम किसको बालक कह रहे हो ? इस शरीर को ? जिसके बाल सफेद हो गये हों, केवल उसे वृद्ध नहीं कहा जाता । अगर बालक के पास भी ज्ञान है तो पंडित विद्वान् उसे ज्ञानवृद्ध कहते हैं। उम्र बड़ी हो, धन ज्यादा हो या बड़ा पुत्र-परिवार हो उसे श्रेष्ठ नहीं कहा जाता। जो संपूर्ण वेदों का ज्ञाता होता है वही सबसे श्रेष्ठ होता है।''

द्वारपाल : ''ऋषिवर ! क्षमा कीजिए। मैं अभी आपको राजा साहब की सभा में ले चलता हूँ।''

अष्टावक्र मुनि जब राजा जनक की सभा में पहुँचे तब उनके आठों अंग टेढ़े-मेढ़े देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग खिलखिलाकर हँस पड़े । अष्टावक्रजी ने उन सभी पंडितों को निहारा, फिर राजा जनक को उलाहना देते हुए कहा :

''राजन् ! मैंने तो सुना था कि आपके ज्ञानयज्ञ में विद्वानों और पंडितों की सभा होती है लेकिन मैं देख रहा हूँ कि यहाँ सब चमार बैठे हैं क्योंकि ये सब इस हाड़-चाम युक्त शरीर के रूप-रंग को देखकर हँस रहे हैं। जैसे मटके का आकार टेढ़ा-मेढ़ा हो तो उसमें आया हुआ आकाश वास्तव में टेढ़ा-मेढ़ा नहीं होता है, ऐसे ही सर्जनहार के सर्जन पर आरोपित किये हुए नाम और आकार के भेद से सत्य परे होता है। नाम और आकार का भेद मिथ्या है। सत्य तो सदा एकरस रहता है। जो नाम और आकार पर, हाड़ और चाम पर दृष्टि रखता है वह चमार ही कहा जाता है । जिसकी आत्मदृष्टि हो वही सच्चा विद्वान् है।''

अष्टावक्र मुनि के ऐसे वचन सुनकर सभी लोग स्तब्ध रह गये कि : 'यह लड़का क्या बोल रहा है !'

बारह वर्ष के बालक अष्टावक्रजी जो कह रहे हैं वह आज के मनुष्य की तो सारी जिंदगी बीत जाये फिर भी उसे पता नहीं चलता या जानने की इच्छा भी नहीं होती कि आत्मा क्या है ? उसका स्वरूप कैसा है ? जिसके लिये मनुष्य-जन्म मिला है उस लक्ष्य का खयाल ही नहीं होता है। मनुष्य जीवन की यह कैसी करुणता है !

राजा जनक को खुशी हुई कि सचमुच में यह बालक ज्ञानवृद्ध लगता है। उन्होंने अष्टावक्रजी से कहा : ''बेटा ! बंदी को जीतने की अभिलाषा से शास्त्रार्थ करने के लिए कितने ही विद्वान् आये लेकिन बंदी के करीब जाते ही उनका प्रभाव नष्ट हो गया। वे पराजित एवं तिरस्कृत हो चुपचाप राजसभा से निकल गये।''

अष्टावक्रजी : ''क्या मैं शास्त्रार्थ किये बिना ही लौट जाऊँ ? क्या आप मुझे दुर्बल समझ रहे हैं ? बंदी को मेरे जैसे के साथ शास्त्रार्थ करने का अवसर ही नहीं मिला इसलिए वह शेर की तरह दहाड़ रहा है । आज वह पराजित होकर ही रहेगा।''

अष्टावक्रजी की वाणी में प्रभाव था, फिर भी राजा जनक ने कहा : ''बेटा ! पहले मैं जो प्रश्न करूँ उसके उत्तर दे, फिर तू बंदी के साथ शास्त्रार्थ कर सकेगा।''

राजा जनक : ''ऐसा कौन पुरुष है जिसके तीस अवयव, बारह अंश, चौबीस पर्व और तीन सौ साठ अरे हैं और वह तीन करवटें बदलता है ?''

अष्टावक्रजी : ''वह कालपुरुष है जो सर्दी, गरमी और बारिश का मौसम ऐसे तीन करवटें बदलता है । उसके बारह अमावस और बारह पूर्णिमारूपी चौबीस पर्व, ऋतुरूप छः नाभि, मासरूप बारह अंश, दिनरूप तीन सौ साठ अरे हैं। वह निरंतर घूमनेवाला संवत्सररूप कालचक्र पुरुष है।''

राजा जनक ने दूसरा प्रश्न किया : ''ऐसा कौन-सा प्राणी है जो सोते वक्त भी आँखें खुली रखकर सोता है ? ऐसा कौन है जो जन्म लेकर चलता ही नहीं है ? जिसको हृदय नहीं होता वह कौन है ? ऐसा क्या है जो वेग से बढ़ता है ?''

अष्टावक्रजी : ''ये तो कोई प्रश्न हैं राजन् ! सुनिए। मछली सोते वक्त भी आँखें बंद नहीं करती। अण्डा जन्म लेकर भी नहीं चलता। पत्थर को हृदय नहीं होता और नदी हमेशा वेग से बढ़ती है।''

अष्टावक्र मुनि के जवाब सुनकर राजा जनक आश्चर्यचकित हो गये ! जनक ने कहा : ''आप तो साक्षात् देवता हैं । बंदी के साथ शास्त्रार्थ करने में समर्थ हैं। आप बंदी के साथ शास्त्रार्थ कर सकते हैं।''

अष्टावक्र मुनि खड़े हुए और बंदी के पास जाकर कहने लगे : ''बंदी ! तुम आखिरी श्वास गिन लो । अपने इष्टदेव को याद कर लो । आज तक तुमने कइयों को हराया है, आज तुम्हारी बारी है।''

ऐसा कहकर अष्टावक्रजी ने बंदी का मनोबल हर लिया। एक बार मनोबल गिर जाय फिर आदमी को कुछ सूझता नहीं है । सत्य के राही को, परमात्म- मार्ग के पथिक को अपना मनोबल कभी गिरने नहीं देना चाहिए, चाहे सारी दुनिया ही उसके विरोध में एक तरफ खड़ी हो जाये।

अष्टावक्रजी के साथ शास्त्रार्थ हुआ। उसमें बंदी की हार हुई और अष्टावक्रजी की जीत हुई। अष्टावक्र मुनि ने राजा जनक से कहा : ''राजन् ! अब किसकी आज्ञा की राह देख रहे हैं ? बंदी के साथ शास्त्रार्थ में जो ब्राह्मण पराजित हुए हैं उनको बंदी ने समुद्र में डुबो दिया है । अब बंदी को भी समुद्र में डुबो देना चाहिए।''

इस पर बंदी ने कहा : ''हे राजा जनक ! मैं जल-समाधि लेने को तैयार हूँ, लेकिन इससे पहले मैं यहाँ अपने आने का प्रयोजन बताना चाहता हूँ।

मैं वरुण का पुत्र हूँ। वरुणलोक में मेरे पिता ने आपके इस यज्ञ के समान ही १२ वर्षों में पूर्ण होनेवाले ज्ञानयज्ञ का आयोजन किया हुआ है। उसमें विद्वान् ब्राह्मणों की जरूरत थी। ऐसे विद्वान् ब्राह्मण आपके राज्य में ही मिल सकते थे, अतः उन्होंने मुझे यहाँ भेजा। शास्त्रार्थ में पराजित सभी ब्राह्मणों को मैंने वरुणलोक में भेजा है। मेरे पिता का ज्ञानयज्ञ भी पूरा होने को होगा। जब मैं जल-समाधि लूँगा तब वरुणलोक में भेजे गये सभी ब्राह्मण जल से बाहर आ जायेंगे।''

राजा जनक को आश्चर्य हुआ ! उनकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा। थोड़ी ही देर में समुद्र में से एक-एक करके सभी ब्राह्मण बाहर आने लगे। जब कहोड़ मुनि बाहर आये तब अष्टावक्रजी ने उनको प्रणाम किया।

कहोड़ मुनि ने कहा : ''हे राजा जनक ! पुत्र हो तो ऐसा हो। जो कार्य मैं नहीं कर सका, वह मेरे पुत्र ने किया है। ऐसा ज्ञानी पुत्र कुल का तो उद्धार करता ही है, और लोगों का भी उद्धार कर देता है।''

राजा जनक ने अष्टावक्रजी की पूजा की और उन्हें गुरुपद पर आसीन करके उनसे आत्मज्ञान प्राप्त किया। वही ज्ञानोपदेश 'अष्टावक्र गीता' के रूप में हमें प्राप्त है जो मोक्षमार्गी साधकों के लिए अमृत है।

*

कार्यावस्था में भी ब्रह्म

'जो कारण-अवस्था में अद्वितीय ब्रह्म था और रहेगा, अभी तो कार्यावस्था में ब्रह्म नहीं है। कारणावस्था में जाकर मैं ब्रह्म से अभिन्न होऊँगा या ब्रह्म को प्राप्त करूँगा' - ऐसा सोचनेवाले उपासक ने मानों, अपने पाँव पर ही कुल्हाड़ी मार दी।

कैसे मार दी ?

कि सृष्टि-दशा में तो ब्रह्म मानों है ही नहीं अर्थात् उसने अपने जीवन-दशा में ब्रह्म का बहिष्कार कर दिया। उसका प्रीतम तो वहीं था, उसके पीछे खड़ा था और वह सोच रहा है कि उसका प्रियतम पेरिस चला गया। ...तो दिल में दुःख होगा कि नहीं !

जो लोग यह समझते हैं कि सृष्टि उत्पन्न होने के पूर्व अजन्मा ब्रह्म था और सृष्टि न रहने के बाद अजन्मा ब्रह्म रहेगा और हम उसके लिए प्यासे रहेंगे, रोते रहेंगे, आँसू बहाते रहेंगे, उसकी याद कर-करके जलते रहेंगे, तब क्या मरने के बाद ब्रह्म मिलेगा ? असल में, वे अपने अंतःकरण को, इन्द्रियों को, भोगों को छोड़ने में असमर्थ हैं, वैराग्यहीन हैं, दुनिया को पकड़ करके बैठे हुए कृपण लोग हैं।

आस्था और विवेक

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

(गतांक से आगे)

जिस शरीर को छोड़कर जाना है उस शरीर के नाम और उसके संबंधों में मानव की इतनी आस्था हो जाती है कि वह उसी थोपे हुए नाम को अमर करना चाहता है। अपने अमर आत्मपद को तो जाना नहीं और मरनेवाले शरीर पर थोपे हुए नाम को अमर करना चाहता है। क्यों ? क्योंकि उसमें उसकी आस्था दृढ़ हो गयी है। अपनी आत्मा में तो आस्था नहीं है कि : 'मैं नित्य हूँ... मैं मुक्त हूँ... मैं आनंदस्वरूप हूँ...' बल्कि जन्म के बाद इस मरनेवाले शरीर का जो नाम रखा गया उसमें आस्था हो गयी है कि : 'मैं यह हूँ।' होना तो चाहिए कि : 'यह नाम शरीर पर थोपा हुआ है...' लेकिन आस्था हो जाती है कि : 'मैं फलाना हूँ... मैं दुनिया में कुछ करके जाऊँ... तख्ती लगवा जाऊँ... अमर हो जाऊँ।' अरे ! जिस महल पर तख्ती है वह महल भी समय पाकर नष्ट हो जायेगा तो तख्ती कब तक रहेगी, भैया ! ...और अगर तख्ती में आस्था हो गयी तो फिर दूसरे जन्म में वहाँ से चींटी होकर गुजरो, चिड़िया होकर तख्ती देखो...

आचार्य विनोबा भावे को किसी भक्त ने कहा :

''गुरुजी ! आप आज्ञा तो दीजिये... मैं यहाँ आपके आश्रम में एक विशाल खण्ड बनवा दूँ। फिर उस पर एक यादगार-पट्ट लगवा दूँगा।''

विनोबा भावे : ''अरे भाई ! मैं इतना पाप नहीं करूँगा। एक तो तेरे से पैसे लूँ खण्ड बनवाने के

लिए और फिर तुझे नरक में भेजूँ ?''

भक्त को आश्चर्य हुआ : ''क्यों गुरुजी !''

विनोबा भावे : ''पैसे भी तू खर्च करेगा और तेरी यादगार भी रहेगी तो तुझे होगा कि : 'यह मेरा नाम है ।' इससे मरनेवाले शरीर में ममता बढ़ जायेगी । सचमुच में यह तेरा नाम नहीं है, नाम तो है शरीर का । इसलिये यह काम तू मत कर ।''

भक्त : ''अच्छा... तो ऐसे ही बनवा देता हूँ।''

विनोबा भावे : ''ऐसे भी नहीं बनाना है ।''

सच्चे संतों का यह हाल होता है । नहीं तो संसार में जिनकी आस्था है वे बोलेंगे कि : 'भाई ! लगवा लेना यादगार-पट्टी ।' यदि ऐसा हो तो समझना कि वे भी आपके ही भाई हैं ।

जो दिखता है उसमें हो जाये विवेक एवं जिससे दिखता है उसमें हो जाये आस्था । यह बात अगर ठीक से समझ में आ जाये तो योगी का योग सिद्ध होने लगेगा, तपस्वी का तप सिद्ध हो जायेगा, जपी का जप सफल हो जायेगा, भक्त की भक्ति सफल हो जायेगी, कर्मी का कर्म सार्थक हो जायेगा । बात बहुत छोटी-सी है किन्तु सब सफलताओं की कुंजी इसमें छिपी हुई है । जो अमल करे, उसकी बलिहारी है ।

इसीलिये कबीरजी ने कहा है :

तीरथ नहाये एक फल, संत मिले फल चार ।
सद्गुरु मिले अनंत फल, कहत कबीर विचार ॥

मनुष्य तीर्थ में स्नान करता है तो पुण्य होता है । अभी के सुख का लालच थोड़ा कम होता है किन्तु भविष्य में सुख का लालच बना रहता है । इसलिये एक ही फल हुआ । संत मिलेंगे तो कहेंगे : भविष्य के सुख का लालच भी छोड़ो, भगवान को अर्पण कर दो तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों फल मिल जायेंगे । लेकिन सद्गुरु मिलते हैं तो विवेकपूर्वक ऐसी युक्ति बता देंगे कि उसका अनंत फल मिलेगा । **न अंतः यस्य सः अनंतः ।** जिसका कोई अंत नहीं वह अनंत है । परमात्मा का अंत नहीं है । सद्गुरु की कृपा से उस अनंत परमात्मा का ज्ञान हो जाता है इसीलिये उसे अनंत फल कहा है ।

अभी जो दिखता है, उसमें विवेक करो और जिससे दिखता है, उसमें आस्था करो । हाँ, तो किससे दिखता है ?

''बाबाजी ! आँख से दिखता है । आँख में आस्था करें ?''

नहीं भैया ! आँख से नहीं दिखता । अगर आँख से दिखता होता तो आँख का पानी सूखने पर भी दिखना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता ।

''मन से दिखता है ?''

मन से भी नहीं दिखता । मन के माध्यम से दिखता है लेकिन मन के कारण नहीं दिखता है । 'आँख देखती है...' यह मन कहता है लेकिन 'मन चंचल है कि शांत ?' यह भी कोई देख रहा है । मेरे मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह आया यह भी तो दिखता है । ...तो जो दिखता है उसमें विवेक करो ।

इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सब दिखेगा तो उसमें विवेक करो कि ये सब बदलनेवाले हैं । फिर भी जो नहीं बदलता, मैं वह आत्मा हूँ । उस आत्मा में अपनी दृढ़ आस्था कर दो तो आपको आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जायेगा । आप ब्रह्मज्ञानी हो जाओगे ।

लोग भजन करते हैं और सोचते हैं कि : 'कोई भगवान आयेंगे ।' आयेंगे तो दिखनेवाले आयेंगे, वह माया की आकृति होगी और जो आयेंगे वह जायेंगे जरूर । लेकिन जिससे दिख रहा है उसको जान लिया तो ज्ञान हो जायेगा । जिन्होंने उसे जान लिया वे निःशंक अपने 'सोऽहम्' स्वभाव में जग गये, परमात्ममय हो गये और जिन्होंने नहीं जाना वे अनजान रह गये, जीवात्मा रह गये ।

केवल दो सूत्र समझ लेना चाहिए : **जो दिखे उसमें विवेक करना चाहिए और जिससे दिखे उस आत्मस्वभाव में आस्था करना चाहिए ।** ...और आस्था करना इन्सान का स्वभाव है । आस्था किये बिना वह रह नहीं सकता । लेकिन वह असली में आस्था नहीं करेगा तो उसकी आस्था नकली में भटकती रहेगी । कभी किसी देव को मानेगा, कभी किसी पदार्थ को मानेगा । पहले माँ की गोद में आस्था थी... फिर खिलौनों में आस्था हुई... फिर पढ़ने में आस्था हुई... फिर 'सर्टिफिकेट' (सनद) में आस्था हुई... फिर लड़की में आस्था हुई... फिर बच्चे में आस्था हुई... फिर बच्चा पढ़-लिख ले उसमें

आस्था हुई... फिर बच्चे की शादी में आस्था हुई... अंत में मरने में आस्था हुई। ...लेकिन मरने से भी काम नहीं चलेगा। काम तो तब बनेगा जब इन बदलनेवाली चीजों में विवेक करोगे एवं अबदल परमात्मा में आस्था करोगे।

यह ज्ञान पाने के लिये पहले बड़े-बड़े राजा-महाराजा राज-पाट छोड़कर जंगलों में जाते एवं ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों को खोजते थे और उन्हें संप्राप्त कर उनकी सेवा में जी-जान से तत्परतापूर्वक लगते थे, तब कहीं जाकर उन्हें दो वचन सुनने को मिलते थे। सुनकर उसका मनन-निदिध्यासन करते थे। ऐसा करते-करते वे परमात्म-ज्ञान में स्थित हो जाते थे।

कथा सुनानेवाले तो राज्य में भी मिल जाते थे। शनिवार की कथा, बुधवार की कथा, धेनुकासुर-अघासुर की कथा, शूर्पणखा-ताड़का की कथा, जाम्बवंत-स्वयंप्रभा की कथा... इन कथाओं के पीछे जो अमृत था वह शुकदेवजी ने परीक्षित को समझा दिया। परीक्षित समझने योग्य थे और शुकदेवजी समझाने में समर्थ थे तो काम बन गया। बाकी के लोग केवल कथा सुनते रह गये।

नाशवान् पद-प्रतिष्ठा में अधिक आस्था हो गयी तो कुदरत पैर पकड़कर नीचे बिठा देती है। परमात्मा बड़ा दयालु है। जहाँ-जहाँ आपकी दृढ़ आस्था होती है वहीं से ठोकरें दिलाता है ताकि आपका विवेक जाग जाये कि : 'जगत की चीजें आस्था करने के लिये नहीं, विवेक से उपयोग करने के लिये हैं।'

जिससे सब दिखता है उसमें आस्था करें एवं जो दिखता है उसमें विवेक कर लें तो जीवन अमृत जैसा हो जाये। फिर कलियुग आप पर असर नहीं कर सकेगा। कलियुग का असर पदार्थों पर होता है, आत्मा पर नहीं होता। अगर आपकी आस्था आत्मा में हो गयी तो कलियुग क्या कर लेगा ?

सतयुग, त्रेता, द्वापर में मनुष्य का जैसा शरीर था वैसा अभी किसीके पास नहीं है। किन्तु सतयुग, त्रेता, द्वापर में महापुरुषों को जो परमात्मज्ञान मिला वह तो अभी-भी वही-का-वही है। इसलिये अभी ज्ञान पा लो, भैया !

✲

सेवा और प्रेम

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सेवा के बिना आध्यात्मिक विकास नहीं होता। बिना सेवा के भौतिक विकास भी नहीं होता तो आध्यात्मिक विकास की तो बात ही दूर है।

स्वार्थ और सेवा में क्या फर्क है ?

दुकानदार में यदि कुछ सेवाभाव है तो ग्राहक उस पर विश्वास करेंगे। नौकर में सेवाभाव है तो उसका स्वामी उस पर विश्वास करेगा, किन्तु वह स्वार्थी होगा तो स्वामी उसको ज्यादा पसंद नहीं करेगा। आपके घर यदि मेहमान आये एवं मिल-जुलकर सेवा में लग जाये तो आप बोलेंगे कि : 'दो दिन और ठहर जाइये...' लेकिन मेहमान यदि कुछ-न-कुछ माँगता ही रहे तो आप उससे ऊब जायेंगे। ऐसे ही गुरु के हृदय में जितना समाज के कल्याण का, सेवा का भाव होगा, उतना वे गुरु प्यारे लगेंगे। उनके मन में यदि कुछ पाने की, 'खपे-खपे' की भावना होगी तो वे इतने प्यारे न लगेंगे।

प्रेम के बिना वास्तविक जीवन का प्रागट्य नहीं होता और प्रेम का प्रागट्य होता है सच्चाई से। स्वार्थ एवं मोह में लेने की भावना होती है जबकि प्रेम और सच्चाई में देने की भावना होती है। प्रेम में तो अपने-आपको दे डालने तक की भावना होती है। यदि स्वार्थवश किसी से मित्रता होती है और स्वार्थ सिद्ध हो जाता है तो मोह का रूप ले लेता है लेकिन यदि स्वार्थ सिद्ध नहीं हुआ तो द्वेष का रूप ले लेता है। ऐसे ही समिति, संस्था या आश्रम में

जो सेवाभाव से जुड़ते हैं उनके हृदय में प्रेम और शांति उभरती है लेकिन जो दिखावा करने के लिए एवं स्वार्थ भाव से आते हैं उनके मन में विद्रोह पैदा हो जाता है।

स्वार्थी आदमी अपने लिये भी दुःख पैदा करता है एवं औरों को भी दुःखी कर देता है जबकि प्रेमी व्यक्ति अपने लिये भी नित्य जीवन का द्वार खोल लेता है एवं जिसके प्रति प्रेम होता है उसको भी रसमय कर देता है।

प्रेम पशु-पक्षी-मनुष्य को तो अच्छा लगता ही है, परमात्मा को भी अच्छा लगता है। प्रेम के कारण ही अनंत-अनंत ब्रह्माण्डों को अपनी भृकुटि के विलासमात्र से नचानेवाला परमात्मा स्वयं छछियनभरी छाछ पर नाचने को तैयार हो जाता है।

जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद्य अभेद सुवेद बतावे।
नारद से सुक व्यास रटै पचि हारे तउ पुनि पार न पावै।
ताहि अहीर की छोहरिया छछियन भरी छाछ पै नाच नचावै॥

प्रेम में केवल देना-ही-देना होता है। श्रीकृष्ण के पास क्या कमी थी ? फिर भी ग्वाल-गोपियाँ उन्हें दिये बिना न रहती थीं। भक्त साधक अपने आराध्य देव को कोई द्रव्य-वस्तु देता है तो प्रेम को प्रगट करने के लिये देता है लेकिन भगवान और संत तो उसे अपना-आपा ही दे डालते हैं।

प्रेम त्यागमूलक है और अहंकार शोषणमूलक है। प्रेमी-प्रेमिका का प्रेम सच्चा प्रेम नहीं है। वह प्रेम स्वार्थमूलक, काम-विकारमूलक होता है। सच्चा प्रेम तो होता है जीव-ईश्वर का, माता-पुत्र का। माँ यदि हिसाब लगाये तो पुत्र पर उसका कितना सारा 'बिल' हो सकता है! कितनी रात्रियाँ वह जागी थी! कितनी बार बेटे को साफ-सुथरा किया, नहलाया-धुलाया, खिलाया-पिलाया!

मैंने सुनी है एक कहानी :

एक बार बीरबल ने अपनी माँ से कहा : ''माँ! मैं तेरी सेवा करके ऋण चुकाना चाहता हूँ। बता, मैं तेरी क्या सेवा करूँ ?''

माँ : ''बेटा ! मेरी सेवा का बदला क्या चुकायेगा ?''

बीरबल : ''माँ ! तू जो कहेगी, वह करूँगा।''

माँ : ''बेटा ! मैंने प्रेम से तुम्हारा पालन-पोषण किया, जो मेरा कर्त्तव्य था। तूने कृतज्ञता का भाव व्यक्त कर दिया... बस, ठीक है। उसीसे मुझे आनन्द है।''

बीरबल : ''माँ ! अब मेरा भी तो कर्त्तव्य है कि मैं तेरी सेवा करूँ!''

माँ : ''बेटा ! प्रेम से जो सेवा होती है वह अलग बात है और मंत्री बनकर जो सेवा की जाती है वह अलग बात है।''

कहानी कहती है कि बीरबल ने हठ पकड़ा। तब माँ ने कहा :

''अच्छा ! वैसे भी मैं बीमार हूँ। बेटा ! आज रात को तू जागना। यदि मुझे पानी की जरूरत पड़े तो तू ही देना।''

बीरबल : ''ठीक है, माँ।''

रात में बीरबल ने माँ के बिस्तर के पास ही अपना बिस्तर लगाया। थोड़ी रात बीती, माँ को खाँसी आयी। बीरबल ने पूछा : ''माँ ! क्या है ?''

माँ : ''बेटा ! एक घूँट पानी ले आ।''

बीरबल पानी ले आया। माँ ने कहा :

''बेटा ! अभी नहीं चाहिए, रख दे।''

बीरबल ने गिलास रख दिया। थोड़ी देर बीती। माँ ने जरा-सी कुहनी मार दी।

बीरबल : ''क्या बात है ?''

माँ : ''जरा प्यास लगी है।''

बीरबल : ''मैंने पानी तेरे पास ही तो रखा है!''

माँ : ''जरा उठाकर दे दे।''

बीरबल ने पानी दे दिया। फिर उसकी आँख लग गयी। थोड़ी देर बाद माँ ने फिर हिलाया :

''बीरबल!''

''माँ ! क्या है ?''

माँ : ''बेटा ! नींद नहीं आती है। जरा पानी तो देना!''

बीरबल : ''पानी दिया तो सही ! यह ग्लास में पड़ा है।''

माँ : ''अच्छा... अच्छा...''

थोड़ी देर और बीती। माँ ने फिर उठाया और कहा :

''बेटा ! पानी।''

बीरबल : ''क्या रात भर पानी-पानी करती है ?''

माँ : ''अरे ! तूने ही तो कहा था कि सेवा करनी है और तू एक ही रात में थक गया ! तूने तो कई रात्रियों में मुझे जगाया था। मैं तो केवल पानी माँगती हूँ, तूने तो बिस्तर पर कई बार टट्टी-पेशाब भी की थी। फिर भी मैंने फरियाद नहीं की थी। मैं तेरे गीले वस्त्रों पर सोई और तुझे सूखे में सुलाया तब भी मैंने फरियाद नहीं की, और तू एक रात न जाग सका ? बेटा ! माँ के हृदय में पुत्र के लिये जो वात्सल्य होता है ऐसा प्रेम अगर पुत्र के हृदय में माँ और भगवान के लिये हो जाये तो सारा संसार स्वर्ग बन जाये।''

पाश्चात्य देशों में कई लोग माँ-बाप के वृद्ध होने पर उन्हें 'नर्सिंग होम' में छोड़ आते हैं। लेकिन भारतीय संस्कृति यह नहीं कहती है कि : 'वृद्ध पशु की तरह माता-पिता को भी 'नर्सिंग होम' (वृद्धाश्रम) में छोड़ आओ।' नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति का तो कहना है कि : 'जब तुम छोटे थे, हर चीज के मोहताज थे तब माँ-बाप ने तुम्हारी सेवा की थी। अब माँ-बाप वृद्ध हुए हैं, बीमार हो गये हैं तो तुम्हारा कर्त्तव्य है कि प्रेम से उनकी सेवा करके अपने हृदय का विकास करो। माता-पिता में परमेश्वर की भावना करके हृदयेश्वर के आनंद को उभारो, जीवन को सफल करो। तुम्हें सेवा का सुन्दर अवसर मिल रहा है।'

प्रेम के बिना वास्तविक जीवन की उपलब्धि नहीं होती और वास्तविक जीवन जीनेवाला व्यक्ति न भी चाहे, तब भी उसके द्वारा हजारों-लाखों लोगों का शुभ हो जाता है, मंगल हो जाता है, कल्याण हो जाता है। जो निष्काम सेवा करता है वह स्वयं तो रसमय जीवन बिताता ही है, औरों के लिये भी कोई-न-कोई पदचिह्न छोड़ जाता है। जो स्वार्थी है वह स्वयं भी अशांत और परेशान रहता है एवं दूसरों के लिये भी अशांति और परेशानी पैदा कर देता है। जिसके जीवन में निष्काम कर्मयोग नहीं है उसका जीवन भी वास्तविक जीवन नहीं है, वरन् खोखला जीवन है।

किसी सूफ़ी शायर ने कहा है :

मोहब्बत के लिये कुछ खास दिल मसरूर होते हैं।
यह वह नगमा है जो हर साज पे गाया नहीं जाता है॥
अहं में ये वाजिब है कि खुदा को जुदा कर दे।
मोहब्बत में ये लाजिम है कि खुद को फिदा कर दे॥

चाहे कोई भी मार्ग हो- भक्तिमार्ग हो चाहे कर्ममार्ग हो, ज्ञानमार्ग हो चाहे योगमार्ग हो, किसीमें भी व्यक्तित्व के सर्जन की बात नहीं आती। कोई यह न सोचे कि : 'मैं आश्रम जाऊँ, सेवा करूँ और अपनी इज्जत बढ़ाऊँ।' इज्जत बढ़ाने के लिये अथवा व्यक्तित्व को सजाने के लिये आश्रम नहीं है वरन् व्यक्तित्व का विसर्जन करने के लिये आश्रम है। व्यक्तित्व का, अहं का विसर्जन करते-करते जब असली इज्जत जागती है तो उसकी चिंता नहीं करनी पड़ती है। व्यवहार में असली इज्जत तो दब जाती है और अहं की इज्जत बढ़ते-बढ़ते वह ठोस होता जाता है और पद पद पर मान-अपमान की चोटें लगती रहती हैं।

दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं :

एक तो वे होते हैं जो जीवन भर जीतते जाते हैं। जैसे हिटलर, सिकंदर, रावण, कंस आदि चतुराई से जीतते गये, जीतते गये, जीतते गये। कई लोग अहं के पोषण की वासना में युक्ति से गरीबों का शोषण करते गये, लेकिन अंत में उन्हें ऐसा झटका लगा कि वे बुरी तरह हारे एवं ८४ लाख जन्मों तक हारने की खाई में जा गिरे।

दूसरे वे होते हैं जो मंदिर में जाते हैं, गुरु के पास जाते हैं। हारना शुरू किया कि : 'मैं कुछ नहीं... भगवान का सेवक हूँ... गुरु की कृपा है...' ऐसा करके हारते जाते हैं। हारते-हारते अपना अहं मिटाकर आत्मरूप को पा लेते हैं, 'अहं ब्रह्मास्मि' का अनुभव कर लेते हैं, ब्रह्मरूप हो जाते हैं, ईश्वर से एकाकार हो जाते हैं।

असली जीत तो प्रेमियों की होती है, निष्काम सेवकों की होती है, भक्तों की, योगियों की होती

है। दिखावटी जीत स्वार्थियों की होती है।

स्वार्थी व्यक्ति के पास धन-दौलत, आडम्बर हो तो आप गलती से उसको सुखी मान लेते हो। वह अपने को सुखी मानता है तो उसकी गलती है लेकिन आप उसे सुखी मानते हो तो आपकी दुगुनी गलती है। बाहरी सुख-सुविधा से सुख-दुःख का कोई विशेष संबंध नहीं होता। सुख और दुःख का संबंध तो अंदर की वृत्ति के साथ होता है।

मनुष्य जितना-जितना स्वार्थी-अहंकारी होता है उतना-उतना वह भीतर से दुःखी होता है और जितना-जितना उसका जीवन निष्काम होता है, निर्दोष होता है उतना-उतना वह सुखी होता है। शबरी भीलन को कोई दुःखी नहीं कह सकता। शुकदेवजी महाराज केवल कौपीन पहनते हैं, वनों में विचरण करते हैं फिर भी हम उनको दुःखी नहीं कह सकते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि मकान-दुकान छोड़कर झोंपड़पट्टी में रहना शुरू कर दो। नहीं... झोंपड़पट्टी में भी सुख नहीं है और मकान में भी सुख नहीं है। सुख तो है प्रभु-प्रेम में, सुख तो है निःस्वार्थता में, सुख तो है निष्कामता में।

प्रभु-प्रेम और सेवा में माँग नहीं होती, स्वार्थ नहीं होता। सेवा स्नेही से जुड़ी होती है। सेवा करनेवाले को अपने अधिकार की परवाह नहीं होती है, अपनी सुविधाओं की परवाह नहीं होती है। अगर प्रेम है, सेवा है तो अधिकार और सुविधाएँ दासी होकर रहती हैं। जैसे कोई सेवक अपने सेठ की सेवा प्रेम से करता है तो सेठ की सेवा के लिये उसको सेठ के बँगले में रहने को मिलता है, सेठ की गाड़ी में घूमने को मिलता है।

सेवा करनेवाले में स्वार्थ नहीं होता तो ऐसे सेवक से प्रीतिपूर्वक सेवा होती है और जिसके प्रति प्रीति होती है, उसका कार्य करने में आनंद आता है। प्रीति का, प्रेम का साकार रूप है सेवा। सेवा करते-करते सेवक इतना बलवान् हो जाता है कि वह सेवा का बदला नहीं चाहता फिर भी बदला उसको ढूँढ़ लेता है।

जो तत्परता, ईमानदारी एवं सच्चाईपूर्वक सेवा करता है उससे सेवा करते समय यदि कोई भूल हो भी जाती है तो वह भूल उसे दिखती है, समझ में आती है। दुबारा वही भूल न हो इसके प्रति वह सावधान हो जाता है।

सेवा की इतनी महिमा है कि सेवा करते-करते सेवक स्वयं स्वामी बन जाता है। वह इन्द्रियों का स्वामी बन जाता है, मन का स्वामी बन जाता है, बुद्धि का स्वामी बन जाता है। अपने शरीर, इन्द्रियों एवं मन को 'मैं' मानने की उसकी गलती निकल जाती है। शरीर में रहते हुए भी वह मन, इन्द्रियों एवं शरीर से पार हो जाता है। फिर चाहे आरुणि हो, उपमन्यु हो या संदीपक हो या शबरी भीलन क्यों न हो, ये सब सेवा से ही महान् पद को प्राप्त हुए।

प्रेमास्पद के प्रति प्रेम का आरंभ है- निष्काम सेवा, सत्कर्म। सेवा प्रेम का आरंभ है और प्रेम सेवा का फल है। फिर सेव्य और सेवक दो दिखते हैं लेकिन उनकी प्रीति एकाकारता को प्राप्त हो जाती है। जैसे, एक ही कमरे में दो दीये दिखते हैं लेकिन प्रकाश दोनों का एक ही होता है। हम यह नहीं बता सकते कि किस दीये का कौन-सा प्रकाश है।

व्यवहार में अगर ईश्वरप्राप्ति के अनुभव करने हों तो सेवा ईश्वरप्राप्ति का आरंभ है और हृदय की शीतलता, प्रसन्नता, आनंद... ये ईश्वर के प्रागट्य के संकेत हैं। सेवा में इतनी शक्ति है कि वह हृदय को शुद्ध कर देती है, विकारी सुखों की वासना मिटा देती है, सुख-दुःख में निर्लेप कर देती है एवं स्वामी के सद्गुण सेवक में भर देती है और स्वामी का अनुभव सेवक का अनुभव हो जाता है।

'श्रीरामचरितमानस' में आता है :

सबतें सेवा धर्म कठोरा...

सेवा-धर्म सबसे कठोर तो है लेकिन उसका फल भी सबसे बढ़िया है। उत्तम सेवक सेवा का फल नहीं चाहता। उसको सद्गुरु की ओर से चाहे कितना भी कठोर दंड मिले, वह तो यही समझता है कि : 'दंड मेरी गलतियों के लिये है, मेरी शुद्धि के लिये है।' वह सद्गुरु के प्रति अहोभाव का, धन्यता का अनुभव करता है।

उड़िया बाबा से किसीने पूछा कि : ''गुरुजी

ने हमें स्वीकार कर लिया है, यह कैसे पता चले ?''

उड़िया बाबा ने कहा : ''तुम यदि गलती करते हो और गुरु तुम्हें निःसंकोच डाँट दें तो समझ लेना कि गुरु ने तुमको स्वीकार कर लिया है। किन्तु गुरु को तुम्हें डाँटने में संकोच हो रहा हो, गुरु सोचते हों कि : 'क्या पता, यह समर्पित है कि नहीं...' तो समझना कि समर्पण में अभी कमी है । जैसे हम निःसंकोच अपनी वस्तु का उपयोग करते हैं, ऐसे ही गुरु अपने शिष्य को निःसंकोच भाव से कहें कि : 'यह कर दे... वह कर दे...' तो समझना कि गुरु शिष्य पर प्रसन्न हैं।''

''गुरु प्रसन्न कब होते हैं ?''

''जब हमारी उन्नति होती है।''

''हमारी उन्नति कब होती है ?''

''जब हम अपना व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़कर ईश्वर के लिये काम करते हैं।''

सेवा में बड़ी शक्ति होती है। सेवा सेव्य को भी सेवक के वश में कर देती है। श्री हनुमानजी ने सेवा से ही श्रीरामजी को प्रसन्न कर लिया था... और कलियुग में तो सेवाधर्म का बड़ा माहात्म्य है क्योंकि कलियुग में योग-समाधि सब लोग नहीं कर सकते लेकिन अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार सेवा तो सभी कर सकते हैं । अतः सेवक को, साधक को, भक्त को चाहिए कि वह निःस्वार्थ होकर, निष्काम होकर तत्परता एवं ईमानदारीपूर्वक सेवा करे।

सुख को भविष्य में मत ढूँढो । यह मिलेगा तब सुखी होऊँगा, इतना करूँगा तब सुखी होऊँगा... ऐसा नहीं । वर्त्तमान क्षण को ही सुखद बनाने की कला सीख लो क्योंकि भविष्य आता नहीं और जब भी आता है तब वर्त्तमान बनकर ही आता है।

(आश्रम की 'निर्भयनाद' पुस्तक से)

गीता में वास्तविक जीवन की दिशा

[गीता जयंती : ७ दिसम्बर २०००]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

मानवमात्र के जीवन की तीन माँगें हुआ करती हैं :

(१) स्वस्थ जीवन, (२) सुखी जीवन, और (३) सम्मानित जीवन।

यदि उचित आहार-विहार का ध्यान रखा जाये तो मनुष्य सदैव स्वस्थ रह सकता है। भोजन हल्का, सुपाच्य, ताजा, पौष्टिक एवं सात्त्विक हो, वातावरण शुद्ध हो और मन शुद्ध हो तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य बीमार पड़े। ऐसा नहीं कि थोड़े-से मजे के लिए शराब पी ली, पानपराग खा लिया। वास्तव में यह मजा नहीं, सजा है। इनसे स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचती है । व्यसनों के सेवन से मनुष्य गुमराह हो जाता है। सच्चा मजा तो केवल हरिनाम में है, सत्संग में है, गीता जैसे शास्त्रों के अध्ययन एवं मनन में है।

जाम पर जाम पीने से क्या फायदा ?
रात बीती सुबह को उतर जायेगी।
तू हरिरस की प्यालियाँ पी ले,
तेरी सारी जिंदगी सुधर जाएगी सुधर जाएगी ॥

वास्तविक सुख तो संतचरणों में है, अपनी आत्मा के ज्ञान में है। मनुष्य सुख के लिए बाहर भटकता है जबकि सच्चा सुख तो केवल उसकी आत्मा में ही है। ठीक ही कहा है :

घर बीच आनंद रहा भरपूर, मनमुख स्वाद न पाया।

आनंद तो अपने घर में, अपने आत्मस्वरूप में ही है किन्तु मन की दासता से आबद्ध रहने के कारण जीव उससे बहुत दूर हो जाता है। मन के अनुसार कार्य करते रहने से मनुष्य दुःखी हो जाता है। यही कारण है कि पाश्चात्य जगत आज अशांति की आग में जल रहा है क्योंकि वह उथले पानी में, भौतिक सुख में मजा लेने की कोशिश कर रहा है और इसीलिए वास्तविक मजा से दूर होता जा रहा है।

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।

असली मजा तो अन्तरतम की गहराई में, आत्मा में ही है। कबीरजी कहते हैं :

मीन सुखी जहँ नीर अगाधा।

मछली वहीं सुखी रहती है जहाँ अगाध जलराशि हो। बारिश के दिनों में क्या होता है ? नदियाँ अपना जल ले जाती हैं सागर में। सागर की मछलियाँ समझती हैं कि जहाँ से पानी आता है वहाँ इस समुद्र से भी ज्यादा जल होगा। अतः सागर की मछलियाँ नदी की ओर आती हैं। ऐसे ही नदी की मछलियाँ नालों में आती हैं, नालों की मछलियाँ पोखरों में पहुँच जाती हैं और जब पानी सूखने लगता है तो वहाँ छटपटाने लगती हैं। जीव का भी यही हाल है। उसे आत्म-सागर में अगाध सुख मिलता है किन्तु देखने-सुनने, सूँघने, चखने और स्पर्श करने के मजे लेने के लिए मनरूपी नदी और इन्द्रियरूपी तालाबों में आ जाता है। बाद में वही मजा उसके लिए सजा हो जाता है। पाश्चात्य जगत की यही स्थिति है। वहाँ प्रत्येक डेढ़ मिनट में कैन्सर से एक रोगी मर जाता है, हर १८-१९ मिनट में एक आदमी आत्महत्या करके मर जाता है और हर २८ मिनट में एक आदमी पागल हो जाता है।

क्यों ? क्योंकि वह पानमसाले और मादक द्रव्यों जैसी चीजों का सेवन करता है। इससे उसका जीवन तनावयुक्त हो जाता है। अंततः वह अशांत होकर या तो आत्महत्या कर लेता है या पागल हो जाता है या फिर कैन्सर, हृदयरोग आदि से ग्रस्त होकर भोगते-भोगते मर जाता है।

...अब ये गंदगियाँ हमारे देश में भी आती जा रही हैं। कारण कि यहाँ के लोग भी संयम, सदाचार एवं सत्संग को भूलते जा रहे हैं और बाहर के भौतिक पदार्थों, विषय-विकारों की तरफ अंधी दौड़ लगाये जा रहे हैं। जिन चीजों से पाश्चात्य जगत अशांत और परेशान है उन्हीं को मूर्खतावश फैशन समझकर स्वीकार किये जा रहे हैं। बुफे पार्टी... सत्यानाश कर दिया इस पद्धति ने। हमारे शास्त्रों में तो इसे 'प्रेत भोज' का नाम दिया गया है। खड़े-खड़े भोजन करना तन और मन दोनों के लिए हितावह नहीं है। अज्ञानतावश आज हमारे देश के युवक पाश्चात्य रीति-रिवाजों के प्रचलन से गुमराह हो रहे हैं। डिस्को डान्स... डॉ. डायमण्ड लिखते हैं कि डिस्को डान्स करने से काम-केन्द्र उत्तेजित होते हैं और जीवनशक्ति का ह्रास होता है, जबकि भारतीय पद्धति से कीर्तन करनेवालों की जीवनशक्ति का विकास होता है। फिर भी जो लोग कीर्तन को भूलकर डिस्को की तरफ जा रहे हैं, पवित्र आचरण को भूलकर उनकी गंदी आदतों का नकल करके पतन की ओर जा रहे हैं उन्हें हमें लौटाना होगा अपनी असलियत की ओर।

पाश्चात्य जीवनशैली का अनुकरण करके हम तीव्र गति से सुख लेने की कोशिश करते हैं। 'फर्नीचर बदलो... कारपेट बदलो... गाड़ी बदलो... मकान बदलो... फैशन बदलो... खाने-पीने की व्यवस्था बदलो... बोलचाल की रीत बदलो...' ऐसा करते-करते पूरा जीवन नष्ट हो जाता है। 'जो आये सो खा लिया... जो आये सो पी लिया... जो चाहा सो कर लिया...' ऐसा करके सुखी रहने की मान्यता के आधार पर वहाँ 'हिप्पीवाद' बना। खाओ, पियो और खुश (हैपी) रहो इसीके आधार पर 'हैपीवाद' का प्रचलन हुआ, जिसका अपभ्रंश 'हिप्पीवाद' हो गया।

ऐसा ही एक हिप्पी घूमता-घामता दिल्ली पहुँच गया। कुछ समय तक उसने दिल्ली के फुटपाथों पर गुजारा किया। टूटी-फूटी हिन्दी भी सीख गया। बाल बढ़ गये, कपड़े फट गये, पर कोई परवाह नहीं क्योंकि कुछ भी करके मजे से रहना है, बस। एक दिन सिर खुजलाते-खुजलाते एक मोटी-सी जूँ आ गयी उसके हाथ में। उस समय

कहीं गाना चल रहा था :

'मार दिया जाये या छोड़ दिया जाये,
बोल तेरे साथ क्या सलूक किया जाये...'

हिप्पी जूँ से बोला : ''तू ही बता कि मार दूँ या छोड़ दूँ ।''

इतनी देर में गाने की कड़ी बदली कि :

'बेवफा ! मैंने तो तेरे जुल्फों से प्यार माँगा था, जुदाई तो नहीं...'

यह सुनकर हिप्पी बोला : 'ओह आई सी, यू वान्ट टु लव माई जुल्फ ।' यह कहकर उसने जूँ को फिर से बालों में रख दिया । इस तरह 'हैपी हैपी' कहकर 'अपनी ढपली अपना राग' के अनुसार जीनेवाले तो बहुत हैं लेकिन शास्त्रों का अमृतपान करके, संतों की शरण में जाकर अपने जीवन को उन्नत करनेवाले विरले ही होते हैं ।

जो आये सो खाया-पिया, जैसा जी में आया वैसा किया तो फिर आखिर में वहीं पहुँचोगे जहाँ दुःख-ही-दुःख है, परेशानी-ही-परेशानी है । जीवन का कोई मूल्य नहीं रह जायेगा । जिधर गाड़ी जाये उधर ही भागोगे तो कभी घर नहीं पहुँच पाओगे, भैया ! इसलिए अपने घर पहुँचना है तो सही गाड़ी में ही बैठो । संतों के अनुभव में गोता मारोगे, हरिनाम की गाड़ी में बैठोगे तभी अपने असली घर में पहुँच सकोगे । किसी फकीर ने कहा है :

दिले तस्वीरे है यार,
जबकि गर्दन झुका ली और मुलाकात कर ली ।
वे थे न मुझसे दूर न मैं उनसे दूर था ।
आता न था नज़र तो नज़र का क़सूर था ॥

'श्रीमद्भगवद्गीता' वह नज़र देती है । कौन-सी नज़र ? सुखी जीवन, स्वस्थ जीवन और सम्मानित जीवन जीने की नज़र । विषादयुक्त अर्जुन भी कुरुक्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से गीता सुनकर स्वस्थ हो जाता है । फिर युद्ध जैसा घोर कर्म करता तो है किन्तु कर्मबंधन में बँधता नहीं है क्योंकि उसका कर्म स्वार्थपूर्ण न होकर परमार्थ के लिए है ।

जिसके जीवन में महापुरुषों का सान्निध्य नहीं है, गीता का ज्ञान नहीं है वह संसार में बहुत सारी मजदूरी करके भी थोड़ा-सा हर्ष पाता है । वह जवाबदारियों एवं परेशानियों के बंडल ढोकर जीता है और अंत में उन्हीं बंडलों के बोझ से दब मरता है।

करोड़ीमल सेठ थोड़ा बीमार हुआ तो लोगों ने कहा कि : ''चलो, अस्पताल में भरती हो जाओ ।''

सेठ बोला : ''कितना खर्च होगा ?''

''दस-पंद्रह दिन भरती रहोगे तो चार-पाँच हजार का खर्च आयेगा ।''

सेठ करोड़पति था किन्तु कंजूस था । वह बोला :

''पाँच हजार रूपयों का खून करके भी एक दिन तो मरना ही पड़ेगा । ...तो पाँच हजार बिगाड़कर क्यों मरूँ ?''

लोभी का गणित अपने ढंग का होता है, मोही का अपने ढंग का । 'अपनी-अपनी ढपली, अपना-अपना राग' तो बहुत अलाप लिया लेकिन श्रीकृष्ण के राग के साथ, नानकजी अथवा कबीरजी के राग के साथ अपना राग मिला दिया तो जो उनकी अनुभूति है वह देर-सवेर आपकी अनुभूति हो जायेगी । गीता के वचन आपके अपने वचन हो जायेंगे।

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें । इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी । अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें ।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी ।

स्वामी सतरामदासजी

[गतांक से आगे]

स्वामी सतरामदासजी प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखते थे। मनुष्य तो क्या, रास्ता चलते पशुओं को भी अगर जख्मी हुआ देखते तो उनके जख्म साफ करते, मलहम-पट्टी करते। ऐसा दृश्य देखकर एकबार उनके एक शिष्य साधूराम ने उनसे विनती करते हुए कहा : ''स्वामीजी ! मेरे हाथों पर सफेद दाग हो गये हैं। उनमें खुजली भी बहुत आती है। कृपया इन्हें भी साफ करके मलहम-पट्टी कर दीजिए ताकि मैं इस भयंकर रोग से छुटकारा पा सकूँ।''

स्वामी सतरामदासजी : ''बच्चा ! मैं कोई डॉक्टर या हकीम तो हूँ नहीं, जो तेरे जख्म साफ करके मलहम-पट्टी कर दूँ। तुम किसी डॉक्टर-हकीम के पास चले जाओ, वे तुम्हारा दुःख दूर कर देंगे।''

साधूराम : ''आप तो डॉक्टरों के भी डॉक्टर हैं, हकीमों के भी हकीम हैं। आप उनसे ज्यादा जानते हैं। जानवरों के घाव पर भी आप मलहम-पट्टी करते हैं तो मैं तो इन्सान हूँ। मुझ पर भी थोड़ी दया कीजिए।''

स्वामी सतरामदासजी को साधूराम पर दया आ गई। उन्होंने फरमाया : ''अच्छा... रोज सुबह और शाम दिन में दो बार साबुन से हाथ धोया कर। ईश्वर अच्छा ही करेंगे।''

यह सुनकर साधूराम ने कहा :

''स्वामीजी ! साबुन से तो मैंने कितनी ही बार ये जख्म धोये हैं। उससे तो जख्म और बढ़ जाते हैं। कृपा करके आप मेरे हाथों पर मलहम-पट्टी कर दीजिए।''

स्वामी सतरामदासजी ने साधूराम को समझाते हुए कहा : ''बीते हुए दिनों को याद मत कर। भगवान का नाम-स्मरण करके साबुन से हाथ धोया कर। तेरा दुःख दूर हो जायेगा।''

संत की आज्ञा मानकर साधूराम साबुन से हाथों के जख्म धोने लगा तो उसका रोग दूर हो गया। पहले जो साबुन रोग को मिटा न सका उसी साबुन ने संत की आज्ञा हुई तो जख्म साफ कर रोग से छुटकारा दिला दिया।

सच है कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु ईश्वर और ईश्वर के प्यारों के हुकुम में चलती है। इतनी शक्ति देखने के बावजूद भी अल्प मति के लोगों को संतों की महानता पर विश्वास नहीं होता। वे संतों की परीक्षा लेने की ठान लेते हैं। स्वामीजी को भी समाज के कुछ ऐसी विचारधारा के लोगों की चालबाजी का शिकार होना पड़ा।

स्वामी सतरामदासजी ईश्वर के महान् और परम भक्त होने के साथ-साथ एक ऐसे कोकिलकंठी गायक कलाकार थे कि जिनकी प्रतिस्पर्धा में कोई गायक कलाकार खड़ा नहीं हो सकता था। सामान्यतया कोई भी गायक कलाकार तीन-चार घंटे से अधिक देर तक गा नहीं सकता परन्तु स्वामी सतरामदासजी लगातार बारह-बारह घंटे तक एकरस, एक लय में गा सकते थे। ज्यों-ज्यों समय बीतता, त्यों-त्यों उनका स्वर और भी मधुर एवं बुलंद होता जाता। बिना 'माइक' के दूर-सुदूर तक के लोगों को उनका भजन सुनाई पड़ता और भजन गाने में उन्हें कभी थकान महसूस नहीं होती थी।

एक बार शिकारपुर के कुछ जोगी अपने चेलों सहित रुड़की आकर स्वामी सतरामदासजी से मिले और उन्होंने कहा : ''हमें शिकारपुर में भंडारा करना है। उस अवसर पर हमने शिकारपुर और उसके आस-पास के शहरों के संतों-महापुरुषों को उनके अमृतवचन और सत्संग के हेतु मनाया है। आप भी हमारे यहाँ पधारकर अपने दो वचन और भजन का आनंद सबको प्रदान करके कृतार्थ करें।''

इस प्रकार वे जोगी स्वामी सतरामदासजी को मनाकर भजन की तिथि तय करके चले गये।

निर्धारित तिथि को स्वामीजी अपनी टोली लेकर वहाँ पहुँचे जहाँ उनके और दूसरे संतों के भजन-कीर्तन का आयोजन किया गया था।

जोगियों के भंडारे में आये हुए सभी संतों के भजन-कीर्तन का अलग-अलग समय रखा गया था। स्वामीजी का समय प्रभातकाल चार बजे रखा गया था। उनकी आदत थी कि 'भगत' (कीर्तन) में जाने से पहले थोड़ी भाँग (ठंडाई) और हुक्का पीकर जाते थे।

दरवेशन जी चाल निराली जाणन था दरवेश अदा।

अर्थात् 'दरवेशों की चाल निराली होती है जिसे दरवेश ही जानते हैं।' परमात्म-इश्करूपी भाँग का नशा उन पर इतना सवार होता है कि बाह्य भाँग का नशा उन पर चढ़ नहीं सकता। फिर भी वे पीते हैं। इसलिए कहते हैं कि :

'तन जिसकी माला है, मन जिस माला का मोती है, दिल जिसका तंबूरा (सितार) है उस सितार की तारें हमेशा रूहानी राग अलापती रहती हैं। जिनका राग उस ईश्वर के इश्क के लिए होता है, जिनकी आँखों पर इलाही इश्क का खुमार चढ़ा हुआ होता है ऐसे आशिकों पर बाह्य भाँग क्या अपना नशा चढ़ा सकती है!'

प्रभातकाल में स्वामी सतरामदासजी ने अपने शिष्य जादूराम को कहा : ''जादू! सुखो (भाँग-ठंडाई) घोटकर ला और हुक्का भी भरकर ले आ।''

जादूराम 'जो आज्ञा' कहकर गया किन्तु थोड़ी देर बाद खाली हाथ लौट आया और कहा : ''स्वामी! जोगियों की ओर से रखे गये सेवाधारियों का कहना है कि आज हम स्वयं स्वामी के लिए ठंडाई बनाकर लायेंगे।''

सतरामदासजी ने कहा : ''ठीक है, भले वे ही लाएँ।''

जोगियों की खराब नियत को वे जान गए थे। इधर जोगियों की ओर से रखे गये सेवाधारियों के मन में खोट थी। उनके मन में ऐसा था कि 'सतरामदासजी को ऐसी नशीली भाँग पिलाई जाय कि वे नशे में चूर हो जाएँ और मंच पर आ ही न सकें अथवा आएँ तो प्रतियोगिता से जल्दी बाहर हो जाएँ। इनका कार्यक्रम असफल हो जाए। हम दुनिया को दिखा सकें कि इनसे ज्यादा अच्छे गायक कलाकार दूसरे बहुत हैं।' इस प्रकार स्वामी सतरामदासजी की प्रसिद्धि और प्रशंसा को वे डुबोना चाहते थे। लेकिन छोटी मति के मूर्ख लोग यह नहीं जानते थे कि स्वामी सतरामदासजी एक आला दर्जे के आशिक दरवेश हैं, उनकी परीक्षा करना या उनसे धोखा करना निरी मूर्खता है।

इस मलिन मुराद को लेकर जोगियों के सेवाधारियों ने भाँग के साबूत टुकड़ों को तवे पर भुनकर ताँबे के पैसे के साथ उसे घोटा। ऊपर से उसमें मिलाये चने ताकि भाँग गाढ़ा हो। फिर ले आये स्वामी सतरामदासजी के पास। सतरामदासजी तो जान गये थे, लेकिन वे उसे ईश्वर की मर्जी समझकर पूरी-की- पूरी पी गए। ऊपर से पिया हुक्का और तैयार होकर आ गये मंच पर।

संतां नाल वैर कमावदे, दुष्टां नाल मोह प्यार।
अगे पीछे सुख नहीं, मर जमहे वारंवार॥
तृष्ण कदी न बुझे, दबदा होय खुवार।
मुँह काले तिनां निंदकां, नित सची दरबार॥
नानक नाम विहोणियां, ना ऊरवार न पार।

(गुरुवाणी)

प्रभातकाल का सुन्दर सुहावना समय... चन्द्रमा की शीतल चाँदनी धरती को चहुँ ओर से धवलित कर रही है। इस महान् योगी गायक कलाकार के मधुर स्वर को सुनने न केवल इस धरती के लोग आये बल्कि स्वर्ग के देवी-देवता एवं सिद्ध-गंधर्व भी इस लाहूती लाल (दिव्य दरवेश) के स्वर पर आशिक होकर आकाश में एकत्रित हो गये।

प्रभात की ठंडी-ठंडी हवा मन को मतवाला बना रही है। पक्षी जो प्रभात को गीत गाते थे आज वे भी चुप होकर अपने साजन का साज सुनने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। चहुँओर शांति छाई हुई है। ऐसी शांत फिज़ां में मधुरता को भरने के लिए स्वामी सतरामदासजी विराजमान हुए। आज उनके ललाट पर भक्ति का तेज चमक रहा है, आँखों में ईश्वरीय मस्ती का खुमार है और मूर्ख सेवाधारी समझ रहे हैं कि सतरामदासजी भाँग के नशे में चूर हैं।

सतरामदासजी के दिल में आज दर्द है। उन्होंने 'सुहणी राग' से भजन की शुरूआत की :

राम सुमर मन मेरा, दुःख में कौन संगी है तेरा।
भाई भतीजे, कुटुंब कबीलो, कोई न आवत नेड़ा॥
राम सुमिर मन...

इसके बाद उन्होंने अलग-अलग रागों में कितने ही भजन गाये। फिर तो आवाज़ जितनी मधुर और बुलंद होती गई, उतना उनके स्वर में दर्द बढ़ता गया। इतने में प्रभात के अँधेरे पर सुबह की ऊषा रानी ने अपना अधिकार जमाना शुरू किया। लोगों को पता तक नहीं चला कि कब प्रभात पूरी हो गई और सूर्यदेव आसमान पर चढ़ चुके। इधर स्वामी सतरामदासजी भी ईश्वर की मस्ती में मखमूर भजन पर भजन गाते जा रहे हैं। आज उन्हें भी समय का, संगत का, संसार का कुछ पता नहीं है। आज उनके स्वर में पहले की अपेक्षा विशेष मिठास और दर्द है। वे मस्ती में मशगूल होकर गाए जा रहे हैं और श्रोता भी मंत्रमुग्ध होकर सुने जा रहे हैं। हजारों की संख्या में भक्तगण बैठे हैं। सब प्रभात से ही बैठे हैं और अब शाम होने को आई है फिर भी कोई भक्त उठने का नाम नहीं ले रहा है। जिस खुमारी में सतरामदासजी हैं, उसी खुमारी में भक्त भी हैं। उनकी आवाज में कोई गिरावट या थकान नहीं दिख रही। ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा है, त्यों-त्यों स्वर बुलंद होता जा रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों उनकी स्वर लहरियाँ अब धरती को चीर डालेंगी, आसमान अभी लोगों पर गिर पड़ेगा।

जोगियों के दिल में अब डर पैदा हुआ। उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ। वे डरने लगे कि कहीं कुछ अपशकुन न हो जाये, अघटित न घट जाये। उनकी भूल का फल सबको न भोगना पड़े इसलिए वे मन-ही-मन सतरामदासजी से प्रार्थना करने लगे। उनसे अपनी भूल के लिए क्षमायाचना करने लगे। अपने गले में कपड़ा डालकर स्वामी सतरामदासजी के चरणों में गिरकर पश्चात्ताप के आँसू बहाने लगे और बोले : 'बस स्वामी, बस। भजन बंद कीजिए। नहीं तो यह धरती फट जायेगी। हमारा दिल टुकड़ा-टुकड़ा हो जायेगा। हमें क्षमा कीजिए, स्वामी! ...क्षमा कीजिए।'

जैसे ही स्वामी सतरामदासजी ने आँखें खोलकर देखा तो वे ही जोगी और सेवाधारी थे जिन्होंने उन्हें भाँग पिलाकर हराने की कोशिश की थी। स्वामी सतरामदासजी ने उन मूर्ख अभिमानी जोगियों से कहा : ''और भी जितनी भाँग पिलानी हो, पिलाओ। ले आओ, मैं पीने के लिए तैयार हूँ।''

जोगियों के आँखों से आँसू टपक पड़े। उन्होंने फिर से क्षमायाचना की। संत तो दयालु होते ही हैं। उन पर रहम खाकर उन्होंने भजन समाप्त किया। इस तरह उन्होंने बारह घंटे से भी अधिक समय तक भजन गाकर एक नया कीर्तिमान् स्थापित किया।

चवन था चारी, हल हेठाईं वाट तूं।
मानजन मथाहींअ में, था अपर अहंकारी।
उथी खुदी ख्वारी, निइड़ी वठज वाट तू॥
- 'सामी'

कहते हैं सयाने, चल नीचे की राह तूँ।
मरते हैं वो, रहते हैं जो अहंकारी।
उठ खुदी को ख्वार तू, नम्र होकर चल तू॥

पारुमल से साँई पारुशाह...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

ब्रिटिश शासनकाल में पारुमल नाम का एक पुलिस कर्मचारी था । वायसराय के आगमन के बंदोबस्त में वह दो दिन लगा रहा । दो दिन के बाद उसे भोजन करने के लिये छुट्टी मिली । भोजन के दो ग्रास खाये, तीसरा हाथ में था कि इतने में डी. एस. पी. का आदमी आकर बोला : ''साहब बुला रहे हैं ।''

पारुमल को लगा कि : 'एक वाइसराय की खुशामद करने में इतने सिपाही तो लगे हुए हैं और जिस पेट के लिये इतनी गुलामी करते हैं वह पेट भरने की भी फुर्सत नहीं ? बन्दों की इतनी खिदमत करते हैं, उसका आखिर यही नतीजा ?' प्रज्ञा का प्रकाश हो गया । उसने अपनी बंदूक और वर्दी ऑफिसर के सामने फेंक दिया एवं कहा : ''यह लो वर्दी । नहीं करनी है नौकरी ।'' पारुमल वहाँ से चल दिये ।

उनकी पत्नी गंगा मायके में थी । उस जमाने में गंगा के माँ-बाप का जरा बोल-बाला रहता था । पारुमल वहाँ फकीरी वेश धारण करके गये तो उनका वेश देखकर ससुरजी ने कहा : ''नौकरी छोड़कर आये हो, अब हम अपनी बेटी तुम्हें थोड़े ही देंगे !''

पारुमल ने कहा कि : ''मैं गंगा को लेने नहीं आया हूँ, गंगामाता कहने आया हूँ ।''

पारुमल अपने घर आ गये । कमरा बंद करके बैठ गये । एक दिन... दो दिन... ऐसा करते-करते आठ दिन तक कमरे में बन्द रहे । जैसे जूनागढ़ में नरसिंह मेहता लगातार सात दिन तक शिवालय में बैठे रहे तो उनकी कुंडलिनी शक्ति जागृत हो गयी और उनके जीवन में सामर्थ्य आ गया, ऐसे ही पारुमल को साधना से सामर्थ्य मिला ।

पारुमल संयुक्त कुटुंब में रहते थे । वे नौकरी छोड़कर आये तो कुटुम्ब का वातावरण उनके लिये कुछ बदला हुआ-सा हो गया ।

सुर नर मुनि सब कै यह रीती ।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥

(श्रीरामचरित० कि० : ११.२)

पारुमल ने अपने कानों से सुना । कुटुम्बी कह रहे थे कि : ''सात दिन हुए, वह नौकरी छोड़कर कमरे में बंद होकर बैठ गया है ।'' पारुमल ने सोचा कि : 'अब इनकी ममता को आजमाकर देखें । सब मुझे कितना चाहते हैं और मेरी नौकरी या रूपयों को कितना चाहते हैं यह जरा देखें ।'

कुटुम्ब का सोने-चाँदी के गहने आदि का धंधा था । सुन्दर सुहावने आभूषण बनाकर 'शो-केस' में रखते थे । पारुमल उन आभूषणों को लेकर हमामदस्ते में कूटने लगे । आभूषण पर दस्ते के धक्के से सब संबंध टूट गये । चाचाजी गुस्से हो गये, दादा ने और बाप ने सुना दी । भाई भी नाराज हो गये । चचेरे भाइयों ने भी आँख दिखायी, बड़बड़ाये । पारुमल भीतर से तो सतर्क थे अतः सोचने लगे कि : 'वाह रे वाह, संसार ! तेरे संबंधों में आभूषण पर दस्ते के दो धक्के सहने की ताकत नहीं । दो-पाँच हजार रूपयों का नुकसान सहने की शक्ति नहीं ।'

उनके भीतर वैराग्य जाग उठा ।

एक बुजुर्ग ने पारुमल को कोने में बुलाकर कहा : ''क्या करता है ? नौकरी भी छोड़ दी, अब इन आभूषणों को क्यों कूटने लगा है ?''

पारुमल थोड़ी देर तक तो कुछ नहीं बोले । आठ दिन के एकांतवास से पारुमल की साधना मजबूत हो गई थी । उन दिनों में तीन केन्द्रों की यात्रा हुई थी और आज्ञाचक्र खुल गया था ।

आज्ञाचक्र में आकर यदि कोई योगी आज्ञा दे तो उसकी आज्ञा के अनुसार प्रकृति में घटना घटने लगती है । आपके अंदर भी ऐसी शक्तियाँ छुपी हुई हैं । महामूर्ख में से महा कविकालिदास बन गये । संत तुकारामजी महाराज गरीब और अनपढ़ थे लेकिन उनके 'अभंग' महाराष्ट्र के एम. ए. के पाठ्यक्रम में आते हैं ।

जिसका ज्ञान का केन्द्र खुल जाता है, उसको यह खजाना मिल जाता है । पारुमल ने अपनी चित्तवृत्ति ज्ञान-केन्द्र, आज्ञाचक्र पर एकाग्र की और कहा : ''मैंने कुछ नहीं किया है । जैसा था वैसा पड़ा है आपका माल ।''

सबने देखा कि पारुमल जिसे हमामदस्ते में कूट रहे थे, वे आभूषण 'शो-केस' में यथावत् पड़े हुए हैं। सब आश्चर्यचकित थे। यह कैसे हो सकता है ? सब पारुमल की खुशामद करने लग गये।

तब पारुमल ने कहा : ''देख लिया सबका प्यार।'' पारुमल उधर से चल दिये।

किसी एकांत गिरि-गुफा में छः महीने तक रहे। वहाँ धारणा-ध्यान-समाधि की। साधना के प्रभाव से सामर्थ्यवान् हुए। फिर अपने गाँव लौटे। गाँव के लोग उनके सामर्थ्य से प्रभावित हुए। कभी कोई थोड़ा प्रसाद आदि उनके पास ले आते तो पारुमल उसे लोगों में बाँट देते। उस वजह से बच्चों की भीड़ उनके पीछे-पीछे लगी ही रहती थी।

एक बार उनके पास कुछ नहीं था और किसी दुकान के पास से गुजर रहे थे तब बच्चों ने कहा :

''भाई ! प्रसाद दो।'' पारुमल ने उस दुकान से दोनों अँजुली भरके रेवड़ी ली और बच्चों को बाँटना शुरू कर दिया। दुकानवाला कोई निगुरा था। उसने पारुमल को डाँटा कि : ''क्या तुम्हारे बाप का माल है, जो देने लगे हो ?'' पारुमल के दिल को चोट लग गयी। 'न खाया न खाने दिया। फट् मूआ...' ऐसे उद्‌गार उनके मुँह से अनायास निकल पड़े। दुकानवाले को मानों श्राप मिल गया। दो-तीन दिन में वह आदमी पागल हो गया और बुरी तरह बरबाद हो गया।

तब बाजार के लोगों ने मिलकर यह फैसला किया कि : ''पारुमल बाजार से गुजरते हों और किसी भी दुकान से कोई चीज ले लें तो उनको रोकना नहीं है।'' मुनीमों, मैनेजरों सबको यह आदेश दे दिया गया। चमत्कार से नमस्कार होने लगा। अब पारुमल के दर्शनार्थी भी बढ़ गये और प्रसाद के भक्त भी बढ़ गये।

उस समय इस्लाम का प्रभाव था। नवाब और मुल्लाओं ने सोचा कि : 'पारुमल को बहुत लोग मानते हैं। अगर पारुमल को मुसलमान बना दिया जाय तो बाकी के लोग आसानी से मुसलमान हो सकते हैं।' पारुमल यह बात मानने को तैयार नहीं हुए क्योंकि उन्होंने तो आध्यात्मिक प्रसाद पाया था। सनातन धर्म की महिमा से वे परिचित थे।

तब उन लोगों ने एक दोपहर को पारुमल का अपहरण कराके उनको एक मस्जिद में पहुँचा दिया। उन्होंने सोचा कि : 'हम उनकी सुन्नत कर देंगे फिर घोषणा करेंगे कि यह हमारे फकीर हैं।' सत्ता तो उन लोगों की थी। पारुमल को वहाँ ले गये, जहाँ नाई अपनी औजार आदि की व्यवस्था कर रहा था। पारुमल चुपचाप ध्यान में बैठे और तल्लीन हुए भगवान से प्रेरणा पाने के लिये। अंदर से प्रेरणा मिली। उन्होंने आज्ञाचक्र में चित्त को एकाग्र करके उस नाई के सामने रुष्ट होकर देखा और हुंकार का झटका देते हुए कहा कि : ''क्या करता है ?'' इतना कहते ही नाई की जननेन्द्रिय गायब हो गई। अब वह न स्त्री जाति, न पुरुष जाति, न इतर जाति का, बल्कि जाति नंबर चार! नाई ने मुल्ला, मौलवी, नवाब के आदमी आदि सबको बुलाया और स्नानघर में जाकर अपनी 'सफाचट स्थिति' दिखायी।

सबने कहा : ''ऐसा हो नहीं सकता।''

नाई ने कहा : ''अरे, ऐसा हो गया है।''

मुल्ला-मौलवी स्नानघर में देखते ही तौबा-तौबा कर गये। उन लोगों ने गले में कपड़ा डालकर पारुमल से माफी माँग ली।

नवाब को पता चला तब उसने भी कहा :

''कुछ भी करो, मेरा नाम न आये, माफी माँग लो।''

सब मिलकर पारुमल के चरणों में गिर पड़े और घास का तिनका मुँह में रखकर कहा कि : ''हम आपकी गाय हैं। आप पारुमल नहीं हो, हमारे भी पीर हो। आज से आपका नाम 'पारुमल' नहीं, 'पारुशाह' है। तब से पारुमल 'साँईं पारुशाह' के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

सुन्नत के औजार की धार को तीक्ष्ण करते-करते मखौल उड़ानेवाले उस व्यक्ति पर रुष्ट होकर हुंकार करने से शरीर के अंग गायब हो गये। उसकी पत्नी तीन साल तक पारुशाह के डेरे पर सेवा-बुहारी करती रही। उसकी सेवा से संतुष्ट होकर पारुशाह ने कहा : ''जाओ, तुम्हारा पति

पहले जैसा था वैसा हो गया है। अब उसको संतान होगी।'' पारुशाह की योगशक्ति से हिन्दू-मुस्लिम परिचित हुए, प्रभावित हुए, उनके भक्त बने। अभी भी कल्याण (मुंबई) में उनका आश्रम है। उनके भक्तों की परम्परा है।

संयम और एकाग्रता से सुषुप्त शक्तियाँ जागृत होती हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिए। उन्हीं शक्तियों को ईश्वरप्राप्ति में लगाया जाय तो आत्म-साक्षात्कार हो जाय। आप उसी दिशा में चलने का प्रयास करो। परमात्मा, शास्त्र व संत आपकी मदद में हैं।

❊

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

हँसते के साथ हँसे दुनिया...

किसी गाँव में धोबी और तेली पास-पास में रहते थे। तेली तो अपने कोल्हू में तेल पेरने का धंधा करता था। उसके पास कोल्हू चलाने के लिए एक बैल था। जितना तेल दिन भर में निकलता उतना शाम तक बिक जाता था। इसलिए उसकी गृहस्थी की गाड़ी सुचारु रूप से चल रही थी।

वह अपने कोल्हू से तेल पेरता जाये और गुनगुनाता जाये। ग्राहक आते तो उनको हँसते-हँसते तेल दे देता।

हँसते के साथ हँसे दुनिया, रोते को कौन बुलाता है...

जो खुश रहता है उसके साथ सारी दुनिया खुश होने को तत्पर हो जाती है लेकिन जो परेशानी और दुःखी विचारवाला है उसको अकेले में ही रोना पड़ता है, रोनेवाले का साथ कौन देता है। **दुःखी होना है तो विचारों से दुःख बनाओ, अकेले दुःखी होते जाओ, गलते रहो, सड़ते रहो... कोई साथ देनेवाला नहीं।** लेकिन सुखी होना है, सुख बनाना है तो साथ में कई लोग तैयार हो जायेंगे।

तेली का धंधा अच्छा चल रहा था। वह स्वीकारात्मक विचारोंवाला था, धन्यवादात्मक वृत्ति थी उसकी। जबकि उसके पड़ोस में रहनेवाले धोबी की वृत्ति शिकायती थी, नकारात्मक थी। वह रोज सोचता था कि : 'मैं इतनी मेहनत करता हूँ फिर भी गुजारा नहीं होता और यह तेली बड़े मजे से गीत गुनगुनाते हुए जी रहा है।' धोबी रोज

नमाज़ पढ़ता था और जितनी बार नमाज पढ़े उतनी बार बोले :

''हे खुदाताला ! यह तेली बड़ी मौज से जी रहा है। इसकी मौज का कारण है बैल। यदि बैल कोल्हू न चलाये तो उसका धंधा ठप हो जाये, हे खुदाताला ! कुछ भी हो, इसका बैल मर जाये बस ! इतनी रहमत करना।''

रोज नमाज़ के बाद यही प्रार्थना करे और फिर देखे : उसका बैल मरा कि नहीं। उसकी नमाज़ का बस एक ही लक्ष्य रह गया कि कैसे भी करके तेली का बैल मर जाये।

एक दिन दैवयोग से उसका गधा ही मर गया। यह देखकर वह धोबी सिर कूटते हुए कहने लगा :

''अरे खुदा ! सारे आलम का तू शाह है, शाहनशाहे आलम है और तुझे गधे और बैल की पहचान तक नहीं ? तू खुदा कैसे बना ?''

नमाज़ अदा की बैल को मारने के लिए और मर गया गधा। इसीलिए कहते हैं कि जो दूसरों के लिए कुआँ खोदता है वह आप ही उसमें गिर जाता है। यदि उस तेली को देखकर धोबी ने ईर्ष्या न करके उसमें भी खुदा को ही देखा होता तो उसकी जिंदगी सुधर जाती।

द्वैतभाव ही ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध और शिकायत पैदा कर देता है और आदमी को नरकाग्नि में तपाता है, जबकि अद्वैतभाव आदमी को धन्यवाद, प्रेम और आत्मप्रसाद की ओर ले जाता है जो नरक को भी स्वर्ग बना देता है।

एकबार भगवान विष्णु ने राजा बलि से पूछा :

''बलि ! तुम पाँच मूर्खों के साथ, शिकायती विचारवालों के साथ स्वर्ग जाना पसन्द करोगे या पाँच बुद्धिमानों के साथ, धन्यवादात्मक विचारवालों के साथ नरक जाना पसन्द करोगे ?''

राजा बलि ने कहा : ''भगवन् ! मैं तो पाँच बुद्धिमानों के साथ नरक जाना पसंद करूँगा क्योंकि उनके साथ रहने से नरक भी स्वर्ग बन जायेगा जबकि मूर्ख एवं शिकायती विचारवाले लोग स्वर्ग को भी महा नरक में परिणत कर देंगे।''

अतः जीवन में धन्यवादात्मक वृत्ति होनी चाहिए, स्वीकारात्मक वृत्ति होनी चाहिए, शिकायत या दुराग्रह नहीं। परमात्मा का सतत चिंतन होना चाहिए। अपने इष्ट या गुरु को देखो, श्रीराम व श्रीकृष्ण को देखो। उनके जीवन में हजार-हजार मुसीबतें एवं विघ्न-बाधाएँ आयीं लेकिन उनके चित्त में कभी कोई शिकायती वृत्ति नहीं उठी।

राजतिलक की घोषणा होने के बाद वनवास दे दिया गया तो भी श्रीरामजी के चेहरे पर वही मुस्कुराहट। छः दिन के हुए तो पूतना जहर पिलाने आयी, मामा कंस ने जान से मारने के लिए अघासुर, धेनुकासुर, शकटासुर, बकासुर आदि मल्लों को भेजा तो भी श्रीकृष्ण के मन में कोई शिकायत नहीं वरन् उनके चेहरे पर सदैव वही स्मित और ओठों पर बंसी बज रही है।

मुस्कुराके गम का जहर, जिनको पीना आ गया।
यह हकीकत है कि जहाँ में, उनको जीना आ गया॥

श्रीरामजी का अपमान हुआ, श्रीकृष्ण का अपमान हुआ, शुकदेवजी का अपमान हुआ फिर भी वे दुःखी नहीं हुए जबकि हमें मान के हजार-हजार मीठे फल मिलते हैं वे याद नहीं रहते और जरा-सा अपमान हुआ तो... शिकायत करने लग जाते हैं, दुःखी हो जाते हैं।

'अरे, अपमान करनेवाले में भी तू, मान देनेवाले में भी तू, सुख का दाता भी तू और दुःख का दाता भी तू...'

तेरे फूलों से भी प्यार, तेरे काँटों से भी प्यार।

ऐसा समझकर अपने जीवन को परमात्मा के प्रति धन्यवाद से भरकर तो देखो ! फिर आपके जीवन में सदैव सुख का संगीत गूँजने लगेगा।

ॐ आनंद... ॐ शांति... ॐ आनंद...

*

चिट्ठी का आदर

एक सेठ की दो फैक्ट्रियाँ थीं। सेठ कहीं बाहर गया हुआ था। पीछे से आय में कुछ गड़बड़ हो गयी। सेठ ने दोनों फैक्ट्रियों के मैनेजरों की बराबर खिंचाई करते हुए पत्र लिखा जिसके अंत में था कि :

''मेरी इस चिट्ठी का ठीक से आदर होना चाहिए, नहीं तो तुम्हारे लिये मुसीबत खड़ी हो सकती है। यदि तुम इस चिट्ठी का आदर करोगे तो

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।

'तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरु के चरणकमलों की सेवा करना ।'

(अरण्य काण्ड : ३५)

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो ।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा ।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥

'यह मनुष्य शरीर भवसागर से तरने के लिये बेड़ा (जहाज) है । मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है । सद्गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेनेवाले) हैं । इस प्रकार दुर्लभ (कठिनता से मिलनेवाले) साधन सुलभ होकर (भगवत्कृपा से सहज ही) उसे प्राप्त हो गये हैं । ' (उत्तर काण्ड : ४३.४)

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई ।
जौं बिरंचि संकर सम होई ॥

'गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्माजी और शंकरजी के समान ही क्यों न हो ?' (उत्तर काण्ड : ९२.३)

ईश्वर जिसके अंतःकरण में सुखी होने की शक्ति देता है, वही मनुष्य अपने जीवन तथा इस जगत में से सुख पा सकता है । बाकी तो कई लोग सुख के साधनों से परिपूर्ण होते हुए भी जीवन में कभी सुखी नहीं हुए । उनके अंतःपुर का अधिकार संकुचित हो चुका होता है अतः वे रस नहीं ले सकते ।

'समस्त दुःख-दैन्य की अपेक्षा मैं बड़ा हूँ' -यह बात मन को बारंबार समझाना । 'मैं प्रत्येक क्षण जी रहा हूँ, इसके लिए ईश्वर की अनंत शक्ति खर्च हो जाती है' - यह भूलना नहीं ।

'इतनी बड़ी शक्ति से सुरक्षित एवं इतने सारे प्रेम से आबद्ध हूँ मैं... फिर मुझे खेद कैसा ? किसीने मुझे कुछ कहा या कौन मेरी बात को किस प्रकार समझ पाया ? क्या यही जगत में सबसे बड़ी चीज है ? मेरी दृष्टि एवं मेरी आवाज यह कितनी आश्चर्यजनक एवं प्रचंड घटना है । मेरे जैसी परम आश्चर्यजनक घटना को कोई दुःख मलीन नहीं कर सकेगा, कोई भी पीड़ा तुच्छ नहीं बना सकती...'

(महर्षि रवीन्द्रनाथ टैगोर)

मूर्ख मित्र से समझदार दुश्मन अच्छा...

✽ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✽

शास्त्रों में एक कहावत है : मूर्ख मित्र से समझदार दुश्मन अच्छा होता है ।

एक राजा था । एक दिन वह शिकार खेलने जंगल में गया । वहाँ उसे एक रीछ मिला । उस रीछ को देखते ही राजा को अपने पूर्वजन्म की स्मृति हो आई । राजा ने देखा कि वह और रीछ अपने पूर्वजन्म में प्रगाढ़ मित्र थे । वह रीछ भी राजा को देखते ही पहचान गया । दोनों एक-दूसरे से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए ।

फिर वह रीछ राजा से बोला :

''हे मित्र ! तुम मुझे अपने राजमहल में ले चलो । वहाँ मैं तुम्हारे अंगरक्षक की तरह तुम्हारी रखवाली करूँगा । मेरे होते हुए कोई तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकता । कोई तुम्हारे निकट भी नहीं आ पायेगा ।''

राजा यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला :

''ठीक है । मैं तुम्हें अपने साथ अपने राजमहल में ले जाऊँगा । तुम हर समय रक्षक की तरह मेरे साथ रहोगे तो तुम्हारे भय के कारण कोई भी मेरे निकट नहीं आयेगा और व्यर्थ में मेरा समय बरबाद नहीं करेगा । जो कार्य मेरे चार तलवारधारी अंगरक्षक भी नहीं कर पाते, वह तुम अकेले ही कर लोगे । चलो मित्र ! भले तुम्हारा शरीर रीछ का है फिर भी हम हैं तो पूर्वजन्म के पक्के मित्र ।''

रीछ यह सुनकर अति प्रसन्न हुआ और राजा के साथ राजमहल में आकर उसका अंगरक्षक बन रहने लगा।

भादों का महीना था। एक दिन राजा दोपहर का भोजन करके सो गया। उसने भोजन में खीर खाई थी तो उसके ओठों पर खीर का मीठा रस लगा हुआ था। उसके मुँह के पास मक्खियाँ आकर भिनभिनाने लगीं। रीछ उस समय राजा के पास ही बैठा था तभी एक मक्खी आकर राजा के मुँह पर बैठ गई। रीछ राजा का पक्का मित्र था। राजा के प्रति उसके भाव बहुत शुद्ध थे। उसे लगा कि इस मक्खी के कारण राजा की नींद उड़ जायेगी। उसने झपट्टा मारा तो मक्खी उड़ गयी लेकिन थोड़ी ही देर के बाद वह मक्खी फिर से आकर राजा के ओठों पर बैठ गई। रीछ ने फिर जरा-सी हरकत करके मक्खी को उड़ा दिया। लेकिन जब तीन-चार बार ऐसा ही होता रहा तो रीछ को क्रोध आ गया। उसने सोचा कि : 'मेरे राजा साहब सो रहे हैं और मैं उनका अंगरक्षक उनके पास बैठा हूँ, फिर भी यह मक्खी उनकी नींद खराब कर रही है... उनके मुँह पर मंडरा रही है ?' उस रीछ ने इधर-उधर देखा। दीवाल पर एक म्यान लटक रही थी। उसने म्यान उतारी और उसमें से तलवार निकाली। फिर दोनों हाथों से पकड़कर राजा के मुँह पर दे मारी। मक्खियाँ तो उड़ गईं लेकिन साथ ही राजा का सिर भी धड़ से अलग हो गया।

उस रीछ का भाव गरदन काटने का नहीं था, सेवा का भाव था लेकिन उसका भाव ज्ञानसंयुक्त नहीं था तो उसके मूर्खतापूर्ण प्रयत्न ने राजा की जान ले ली। इसीलिये कहा गया है कि मूर्ख मित्र से बुद्धिमान् शत्रु अच्छा है। मूर्ख मित्र न जाने कब आपको मुसीबत में डाल दे। उस रीछ ने भावुकता की अपेक्षा अगर थोड़ी-सी भी समझदारी से काम लिया होता, तो राजा के प्राण बच जाते।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ९७ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया दिसम्बर २००० के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

ब्रह्मचर्य की समझ !

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

जब स्वामी विवेकानंदजी विदेश में थे, तब ब्रह्मचर्य की चर्चा छिड़ने पर उन्होंने कहा :

''कुछ दिन पहले एक भारतीय युवक मुझसे मिलने आया था। वह करीब दो वर्ष से अमेरिका में ही रहता है। वह युवक ब्रह्मचर्य का पालन बड़ी चुस्ततापूर्वक करता है। एक बार वह बीमार हो गया तो यहाँ के डॉक्टर को बताया। तुम जानते हो डॉक्टर ने उस युवक को क्या सलाह दी ? कहा : 'ब्रह्मचर्य प्रकृति के नियम के विरुद्ध है अतः ब्रह्मचर्य का पालन करना उसके स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है।'

उस युवक को बचपन से ही ब्रह्मचर्य-पालन के संस्कार मिले थे। डॉक्टर की ऐसी सलाह से वह उलझन में पड़ गया। वह मुझसे मिलने आया एवं सारी बातें बतायीं। मैंने उस युवक को समझाया : 'तुम जिस देश के वासी हो वह भारत आज भी अध्यात्म के क्षेत्र में विश्वगुरु के पद पर आसीन है। अपने देश के ऋषि-मुनियों के उपदेश पर तुम्हें ज्यादा विश्वास है कि ब्रह्मचर्य को जरा भी न समझनेवाले पाश्चात्य जगत के डॉक्टर पर ? हमारे ऋषि-मुनि ब्रह्मचर्य-रक्षा से ही परम पद की यात्रा करने में समर्थ बने हैं। ब्रह्मचर्य को प्रकृति के नियम के विरुद्ध कहनेवालों को ब्रह्मचर्य शब्द के अर्थ का भी पता नहीं है। ब्रह्मचर्य के विषय में ऐसे गलत ख्याल रखनेवालों के प्रति एक ही प्रश्न है कि 'आपमें और पशुओं में क्या अंतर है ?'

युवकों ! हजारों वर्ष तक तपस्या करके, सात्त्विक आहार करके, गिरि-कंदराओं में साधना करके प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों की खोज करनेवाले हमारे ऋषियों की समझ ठोस है, सत्य की नींव पर आधारित

है। उसमें विश्वास रखो, श्रद्धा रखो।

देखो, मन को प्रबल बनाना हो तो पहले पवित्रता क्या चीज है ? इसे खूब सूक्ष्मता से समझना होगा। मन को पवित्र विचारों से सराबोर रखने से मनोबल बढ़ता है। मन जितना विकारी विचारों से घिरा रहता है उतना वह निर्बल होता जाता है। इसलिये जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य विकारी वासनाओं का नाश कर देता है। ब्रह्मचर्य का पालन व्यक्ति को उन्नत विचारों के उत्तुंग शिखरों पर प्रस्थापित कर देता है।

कइयों को ब्रह्मचर्य का पालन कठिन लगता है। उनके लिये मेरी सलाह है कि विकारी विचारों को शुद्ध एवं पवित्र विचारों से काटने के अभ्यास से उसमें बहुत सफलता मिलती है। स्त्री मात्र को माता, पुत्री अथवा बहन के रूप में देखने की आदत बना लेने से कामवासना के विचार शांत हो जाते हैं।

भारतीय संस्कृति में माता, पुत्री एवं बहन के संबंधों को अत्यंत पवित्र माना जाता है। जब मन में ऐसी पवित्र भावना रखकर स्त्री की तरफ नजर डालोगे तो विकार तुम्हें कभी नहीं सतायेंगे। ब्रह्मचर्य सभी अवस्थाओं में- विद्यार्थी, गृहस्थी अथवा साधु-संन्यासी के लिये अत्यंत आवश्यक है। सदाचारी एवं संयमी व्यक्ति ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है।''

इस प्रकार स्वामीजी जब अमेरिका के साधकों को ब्रह्मचर्य, सदाचार एवं संयम की महिमा समझा रहे थे, तब पाश्चात्य जगत के डॉक्टरों की समझ कितनी गलत थी- उन्होंने यह भी बता दिया।

आपका मन दिव्य भूमि में रमण करे उसके लिये निम्नांकित उपाय अपनाओ :

अपने प्रतिदिन के सामान्य पापों एवं निर्बलताओं का एक फलक (चार्ट) बनाओ एवं जिस दिन अधोगति की तरफ ले जानेवाली कोई इच्छा उत्पन्न हुई हो उस दिन के खाने में उस इच्छा के सामने सही का निशान (✓) लगा दो। इस प्रकार आपमें कौन-कौन-सी निर्बलताएँ हैं वे दिखेंगी। फिर उन्हें दूर करने का यत्न करो।

जिस दिन किसी अधम इच्छा के आधीन हो जाओ, उसके दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर कहीं एकांत में बैठ जाओ और उस पर विचार करो। फिर दुबारा उस प्रकार का पाप व गलती न हो इसकी सावधानी रखो। लम्बे श्वास लो। 'अब उस अधम सुख व अधम पाप में नहीं गिरूँगा... ॐ... ॐ... ॐ...' इस प्रकार आत्मविवेक व ईश्वरबल को जगाओ। दस मिनट तक इस प्रकार ध्यान करो... बल जगाओ... बल जगाओ... ध्वनि करो...

जगत में कई प्रकार के उपदेशक होते हैं। छोटा-बड़ा, पवित्र-अपवित्र कोई भी व्यक्ति उपदेश देने लग जाता है किन्तु जब तक स्वयं को ही उपदेश देकर अपना मनोबल नहीं बढ़ाता तब तक सब व्यर्थ है। स्वयं अपने मन को ही सीख देने से मनुष्य महान् हो सकता है।

मनुष्य को कई बार खेद होता है। उस वक्त यदि वह प्रयत्नपूर्वक उसका कारण ढूँढ़कर पुरुषार्थ करता है तो वह खेद दूर होता है। खेद के समय किन्हीं महान् ब्रह्मवेत्ता महापुरुष की पुस्तकें पढ़ो। इससे आपका मन दिव्य भूमि में रमण करने लगेगा एवं आपका खेद शनैः-शनैः जड़मूल से नष्ट हो जायेगा। इस प्रकार माया से किसी भी समय प्रभावित न होने का प्रयत्न करने पर मन आपके नियंत्रण में आ जाता है एवं अंत में आप जितात्मा, मुक्तात्मा होकर परमात्मसुख पाने में सफल हो जाते हैं।

एकादशी माहात्म्य

[सफला एकादशी : २१ दिसम्बर २०००]

युधिष्ठिर ने पूछा : ''स्वामिन् ! पौष मास के कृष्ण पक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है ? उसकी क्या विधि है तथा उसमें किस देवता की पूजा की जाती है ? यह बताइये ।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : ''राजेन्द्र ! बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों से भी मुझे उतना संतोष नहीं होता, जितना एकादशी-व्रत के अनुष्ठान से होता है । पौष मास के कृष्ण पक्ष में 'सफला' नाम की एकादशी होती है । उस दिन विधिपूर्वक भगवान नारायण की पूजा करनी चाहिए । जैसे नागों में शेषनाग, पक्षियों में गरुड़ तथा देवताओं में श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण व्रतों में एकादशी तिथि श्रेष्ठ है ।

राजन् ! सफला एकादशी को नाम-मंत्रों का उच्चारण करके नारियल के फल, सुपारी, बिजौरा एवं जमीरा नींबू, अनार, सुन्दर आँवला, लौंग, बेर तथा विशेषतः आम के फलों एवं धूप-दीप से श्रीहरि का पूजन करे । 'सफला' एकादशी को विशेषरूप से दीप-दान करने का विधान है । रात को वैष्णव पुरुषों के साथ जागरण करना चाहिए । जागरण करनेवाले को जिस फल की प्राप्ति होती है, वह हजारों वर्ष तपस्या करने से भी नहीं मिलता ।

नृपश्रेष्ठ ! अब सफला एकादशी की शुभकारिणी कथा सुनो । चम्पावती नाम से विख्यात एक पुरी है, जो कभी राजा माहिष्मत की राजधानी थी । राजर्षि माहिष्मत के पाँच पुत्र थे । उनमें जो ज्येष्ठ था , वह सदा पापकर्म में ही लगा रहता था । परस्त्रीगामी और वेश्यासक्त था । उसने पिता के धन को पापकर्म में ही खर्च किया । वह सदा दुराचारपरायण तथा वैष्णवों और देवताओं की निन्दा किया करता था । अपने पुत्र को ऐसा पापाचारी देखकर राजा माहिष्मत ने राजकुमारों में उसका नाम लुम्भक रख दिया । फिर पिता और भाइयों ने मिलकर उसे राज्य से बाहर निकाल दिया । लुम्भक गहन वन में चला गया । वहीं रहकर उसने प्रायः समूचे नगर का धन लूट लिया । एक दिन जब वह रात में चोरी करने के लिए नगर में आया तो सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया । किन्तु जब उसने अपने को राजा माहिष्मत का पुत्र बतलाया तो सिपाहियों ने उसे छोड़ दिया । फिर वह वन में लौट आया और मांस तथा वृक्षों के फल खाकर जीवन-निर्वाह करने लगा । उस दुष्ट का विश्राम-स्थान पीपल वृक्ष के निकट था । वहाँ बहुत वर्षों का पुराना पीपल का वृक्ष था । उस वन में वह वृक्ष एक महान् देवता माना जाता था । पापबुद्धि लुम्भक वहीं निवास करता था ।

एक दिन किसी संचित पुण्य के प्रभाव से उसके द्वारा एकादशी के व्रत का पालन हो गया । पौष मास में कृष्ण पक्ष की दशमी के दिन पापिष्ठ लुम्भक ने वृक्षों के फल खाये और वस्त्रहीन होने के कारण रात भर जाड़े का कष्ट भोगा । उस समय न तो उसे नींद आयी और न आराम ही मिला । वह निष्प्राण-सा हो रहा था । सूर्योदय होने पर भी उसको होश नहीं आया । सफला एकादशी के दिन भी लुम्भक बेहोश पड़ा रहा । दोपहर होने पर उसे चेतना प्राप्त हुई । फिर इधर-उधर दृष्टि डालकर वह आसन से उठा और लँगड़े की भाँति लड़खड़ाता हुआ वन के भीतर गया । वह भूख से दुर्बल और पीड़ित हो रहा था । राजन् ! उस समय लुम्भक बहुत-से फल लेकर ज्यों ही विश्राम-स्थल पर लौटा, त्यों ही सूर्यदेव अस्त हो गये । तब उसने उस पीपल वृक्ष की जड़ में बहुत-से फल निवेदन करते हुए कहा : 'इन फलों से लक्ष्मीपति भगवान विष्णु संतुष्ट हों ।' यों कहकर लुम्भक ने रात भर नींद नहीं ली । इस प्रकार अनायास ही उसने इस व्रत का पालन कर लिया । उस समय सहसा आकाशवाणी हुई : 'राजकुमार ! तुम सफला एकादशी के प्रसाद से राज्य और पुत्र प्राप्त करोगे ।' 'बहुत अच्छा' कहकर उसने वह वरदान स्वीकार किया । इसके बाद उसका रूप दिव्य हो गया । तबसे उसकी उत्तम बुद्धि भगवान विष्णु के भजन में लग गयी । दिव्य आभूषणों से सुशोभित होकर उसने निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया और पंद्रह वर्षों तक वह उसका संचालन करता रहा । उसके मनोज्ञ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । जब वह बड़ा हुआ, तब लुम्भक ने तुरंत ही राज्य की ममता छोड़कर उसे पुत्र को सौंप दिया और वह स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के समीप चला गया, जहाँ जाकर मनुष्य कभी शोक में नहीं पड़ता ।

राजन् ! इस प्रकार जो सफला एकादशी का उत्तम व्रत करता है । वह इस लोक में सुख भोगकर मरने के पश्चात् मोक्ष को प्राप्त होता है । संसार में वे मनुष्य धन्य हैं, जो सफला एकादशी के व्रत में लगे रहते हैं । उन्हीं का जन्म सफल है । महाराज ! इसकी महिमा को पढ़ने, सुनने तथा उसके अनुसार आचरण करने से मनुष्य राजसूय यज्ञ का फल पाता है ।''

('पद्म पुराण' से)

शंख

शंख दो प्रकार के होते हैं - दक्षिणावर्त एवं वामावर्त। दक्षिणावर्त शंख पुण्य योग से मिलता है। यह जिसके यहाँ होता है उसके यहाँ लक्ष्मीजी निवास करती हैं। यह त्रिदोषशामक, शुद्ध एवं नवनिधियों में से एक निधि है। ग्रह एवं गरीबी की पीड़ा, क्षय, विष, कृशता एवं नेत्ररोग का नाश करता है। जो शंख सफेद चंद्रकांतमणि जैसा होता है वह उत्तम माना जाता है। अशुद्ध शंख गुणकारी नहीं होते, उन्हें शुद्ध करके ही दवा के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

भारत के महान् वैज्ञानिक श्री जगदीशचंद्र वसु ने सिद्ध करके बताया है कि शंख को बजाने पर जहाँ तक उसकी ध्वनि पहुँचती है वहाँ तक रोग उत्पन्न करनेवाले हानिकारक जीवाणु (Bacteria) नष्ट हो जाते हैं। इसीलिये अनादिकाल से प्रातःकाल एवं संध्या के समय मंदिरों में शंख बजाने का रिवाज चला आ रहा है।

संध्या के समय शंख बजाने से भूत-प्रेत, राक्षस आदि भाग जाते हैं। संध्या के समय हानिकारक जंतु प्रगट होकर रोग उत्पन्न करते हैं अतः उस समय शंख बजाना आरोग्य के लिये लाभदायक है।

✲ औषधि प्रयोग ✲

मात्रा : अधोलिखित प्रत्येक रोग में ५० से २५० मि.ग्रा. शंखभस्म ले सकते हैं।

(१) गूँगापन (Dumbness) : गूँगे व्यक्ति के द्वारा प्रतिदिन २-३ घंटे तक शंख बजवायें। एक बड़े शंख में २४ घंटे तक रखा हुआ पानी उसे प्रतिदिन पिलायें, छोटे शंख की माला बनाकर उसके गले में पहनायें तथा ५० से २५० मि.ग्रा. शंखभस्म सुबह-शाम शहद के साथ चटायें। इससे गूँगेपन में आराम होता है।

(२) तुतलापन : १ से २ ग्राम आँवले के चूर्ण में ५० से २५० मि.ग्रा. शंखभस्म मिलाकर सुबह-शाम गाय के घी के साथ देने से तुतलेपन में लाभ होता है।

(३) मुख की कांति के लिये : शंख को पानी में घिसकर उस लेप को मुख पर लगाने से मुख कांतिवान् बनता है।

(४) बल-पुष्टि-वीर्यवर्धक : शंखभस्म को मलाई अथवा गाय के दूध के साथ लेने से बल-वीर्य में वृद्धि होती है।

(५) पाचन, भूख बढ़ाने हेतु : लेंडीपीपर का १ ग्राम चूर्ण एवं शंखभस्म सुबह-शाम शहद में भोजन के पूर्व लेने से पाचनशक्ति बढ़ती है एवं भूख खुलकर लगती है।

(६) श्वास-कास-जीर्णज्वर : १० मि.ली. अदरक के रस के साथ शंखभस्म सुबह-शाम लेने से उक्त रोगों में लाभ होता है।

(७) उदरशूल : ५ ग्राम गाय के घी में १.५ ग्राम भुनी हुई हींग एवं शंखभस्म लेने से उदरशूल मिटता है।

(८) अजीर्ण : नींबू के रस में मिश्री एवं शंखभस्म डालकर लेने से अजीर्ण दूर होता है।

(९) खाँसी : नागरबेल के पत्तों (पान) के साथ शंखभस्म लेने से खाँसी ठीक होती है।

(१०) आमातिसार (Diarrhoea) : १.५ ग्राम जायफल का चूर्ण, ५ ग्राम घी एवं शंखभस्म एक-एक घण्टे के अंतर पर देने से मरीज को आराम होता है।

(११) आँख की फूली : शहद में शंखभस्म को मिलाकर आँखों में आँजने से लाभ होता है।

(१२) परिणामशूल (भोजन के बाद का पेट दर्द) : गरम पानी के साथ शंखभस्म देने से भोजन के बाद का पेट दर्द दूर होता है।

(१३) प्लीहा में वृद्धि (Enlarged Spleen) : अच्छे पके हुए नींबू के १० मि.ली. रस में शंखभस्म डालकर पीने से कछुए जैसी बढ़ी हुई प्लीहा में कमी होती है।

(१४) सन्निपात-संग्रहणी (Sprue) : शंखभस्म को ३ ग्राम सैंधव नमक के साथ दिन में तीन बार (भोजन के बाद) देने से कठिन संग्रहणी में भी आराम होता है।

(१५) हिचकी (Hiccup) : मोरपंख की ५० मि.ग्रा. भस्म में शंखभस्म मिलाकर शहद के साथ डेढ़-डेढ़ घंटे के अंतर पर चाटने से लाभ होता है।

✲

रसायन चूर्ण

जो द्रव्य या औषधि वृद्धावस्था एवं समस्त रोगों का नाश करती है, वह है रसायन । शरीर में रस आदि सप्तधातुओं का अयन अर्थात् उत्पत्ति करने में जो सहायक होती है उस औषधि को 'रसायन' कहा जाता है।

इस रसायन चूर्ण का प्रतिदिन सेवन करने से व्यक्ति स्वस्थ एवं दीर्घायु होता है, आँखों का तेज बढ़ता है तथा पाचन ठीक होता है जिस कारण भूख अच्छी लगती है। यह चूर्ण पौष्टिक, बलप्रद, खुलकर पेशाब लानेवाला एवं वीर्यदोष दूर करके वीर्यवृद्धि करनेवाला है। जीर्ण ज्वर तथा शरीर में गहरा उतरा हुआ धातुगत ज्वर दूर करनेवाला है। तीनों दोषों को सम करनेवाला है। अश्वगंधा के साथ लेने से अत्यंत वीर्यवर्धक है। उदररोग, आँतों के दोष, स्वप्नदोष तथा पेशाब में वीर्य जाने के दोष को दूर करनेवाला है। इस चूर्ण के सेवन से शरीर में शक्ति, स्फूर्ति एवं ताजगी का अनुभव होता है।

पानी के साथ तो प्रत्येक व्यक्ति यह चूर्ण ले सकता है परन्तु विशेष रोग में विशेष लाभ के लिये निम्नानुसार सेवन करें :

* कफ के रोगों में शहद के साथ, वायु के रोगों में घी के साथ तथा पित्त के रोगों में मिश्री के साथ।

* पीलिया के रोग में १ ग्राम लेंडीपीपर के साथ।

* मधुमेह (डायबिटीज) में बड़ी मात्रा ६ से १० ग्राम चूर्ण दिन में दो से तीन बार पानी के साथ। यदि शुद्ध शहद मिले तो शहद के साथ लें। प्रयोगशाला में पास किया गया शहद कृत्रिम होता है, जिसमें शक्कर होती है। इस शहद का प्रयोग न करें।

* सूज़ाक अर्थात् मूत्र की जलन में घी- मिश्री के साथ यह चूर्ण लें।

* मूत्रावरोध में ककड़ी के रस के साथ लें।

* यौन-दौर्बल्य में एवं सामान्य कमजोरी में दूध अथवा घी-मिश्री के साथ लें। प्रदर रोग में चावल के माँड के साथ लें।

* आँखों के नीचे चेहरे पर काले दाग हो गये हों तो दो ग्राम मुलहठी के चूर्ण में मिलाकर सुबह-शाम दूध के साथ लें।

* बाल काले करने के लिये २० से ४० मि. ली. भाँगरे के रस में लें।

मात्रा : इस चूर्ण की २ से १० ग्रा. तक की मात्रा उम्र एवं शरीर के अनुसार ली जा सकती है। इस चूर्ण में गुडुच (गिलोय), गोखरू एवं आँवले होते हैं, जिनके गुणधर्म निम्नानुसार हैं :

गुडुच (गिलोय) : अमृत जैसे गुण रखने के कारण यह औषधि 'अमृता' कहलाती है। त्रिदोषशामक होने से प्रत्येक रोग में, तीनों प्रकार की प्रकृति में, प्रत्येक ऋतु में ली जा सकती है। गुणों में उष्ण होने पर भी विपाक में मधुर होने से समशीतोष्ण गुणवाली है। स्निग्धता होने से बलप्रद एवं शुक्रवर्धक है।

गोखरू : यह औषधि ठंडी होने से गुडुच की उष्णता का निवारण करनेवाली है एवं पेशाब साफ लाकर मूत्रवहन तंत्र के समस्त रोगों को मिटाती है। यह शुक्रवर्धक एवं बलप्रद है।

आँवला : यह औषधि ठंडी, त्रिदोषनाशक, रसायन, वयःस्थापन (यौवन स्थिर रखनेवाली यौवनरक्षक), हृद्य, चक्षुष्य, रक्तवर्धक, मलशुद्धि करनेवाली, धातुवर्धक एवं ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति को बढ़ानेवाली है।

[साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।]

*

मिल का आटा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक

आज कल बड़ी-बड़ी मिलों से बनकर आनेवाले आटे का उपयोग अधिक होता है किन्तु यह आटा खानेवाले के स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाता है। मशीनों से बने आटे की अपेक्षा हाथ की चक्की द्वारा बनाया गया आटा सर्वोत्तम होता है लेकिन मिलों का आटा तो गया-बीता है। आटा सात दिन तक ही पौष्टिक रहता है। सात दिनों के बाद उसके पौष्टिक तत्त्व मरने लगते हैं। इस प्रकार का पोषकतत्त्वविहीन आटा खाने से मोटापा, पथरी तथा कमजोरी होने की सम्भावना रहती है। आटे की मिलों में प्रतिदिन टनों की मात्रा में गेहूँ पीसा जाता है। अतः इतने सारे गेहूँ की ठीक से सफाई भी नहीं हो पाती। फलतः गेहूँ के साथ में चूहों द्वारा पैदा की गयी गन्दगी तथा गेहूँ में लगे कीड़े आदि भी पिसे जाते हैं। साधकों के लिए इसे शुद्ध एवं सात्त्विक अन्न नहीं कहा जा सकता। इसलिए जहाँ तक हो सके गेहूँ को साफ करके उन्हें खुद अपने हाथों से चक्की में पिसवाना चाहिए और उस पिसे हुए आटे को सात दिन से अधिक समय तक नहीं रखना चाहिए।

*

भूल सुधार : कृपया 'ऋषि प्रसाद' के अंक नं. ९५ में पृष्ठ २८ पर 'शीत ऋतु में देहपुष्टि हेतु अंजीरपाक' इसके अन्तर्गत प्रारंभ में **'५० ग्राम सूखे अंजीर'** के स्थान पर **'५०० ग्राम अंजीर'** पढ़ें।

आँखों की रोशनी पुनः वापस

पूजनीय श्री श्री सद्गुरुदेव के चरणकमलों में कोटि-कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणाम !

करीब ३५-३६ साल पहले उगते हुए लाल सूर्य के बजाय चमकते सूर्य पर सतत १५ दिन तक त्राटक करने के फलस्वरूप टेढ़े-मेढ़े विभिन्न प्रकार के रंग दिखने लगे और फिर आँखों से कुछ भी दिखना बिल्कुल बंद हो गया। आँख के पर्दों में घाव हो गया तथा उनमें जलन होने लगी।

लगभग १०-११ मास तक उत्तर प्रदेश में सीतापुर जिले के 'आई हॉस्पिटल' में डॉ. पावा से इलाज करवाया। दोनों आँखों में हर रोज डेकाड्रॉन के इन्जेक्शन लगाये जाते थे। दाहिनी आँख के पर्दे आपस में गोंद की तरह चिपक गये। अनेक किस्म की शिकायतें शुरू हो गयीं। बायीं आँख में काला मोतिया (Glaucoma) हो गया। इससे आँखों के अंदर खून की नसें सूख गईं।

इसके बाद कलकत्ता के सरकारी अस्पताल में वहाँ के भारत-प्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक डॉ. आई. एस. रॉय को दिखाया तो उन्होंने कहा : **''इस पृथ्वी पर ऐसा कोई इन्सान आज तक पैदा ही नहीं हुआ जो तेरी आँख ठीक कर सके। चिंता छोड़ दे। ऊपर जाने के बाद दूसरी आँखें लग जायेंगी।''**

यह सुन मेरी आत्मा काँप उठी। सोचा : अब तो जीवन बहुत ही कठिनाई से बिताना होगा। इस अंधेपन के कारण मैं कई कष्टों से गुजरा। ५०-६० बार कुत्तों पर गिर गया और कुत्तों ने काट भी लिया। नालों और खड्डों में गिर गया। एक बार टैक्सी से टकरा गया जिससे मेरे दोनों पाँव उसके चक्के के नीचे आ गये। लड़की की शादी हुई किन्तु जमाई को देख न सका।

ऐसे अनेक कष्टों को झेलने के बाद भगवान की कृपा से मैंने कलकत्ता के सत्संग में पूज्य गुरुदेव को कहते हुए सुना कि : **''अहमदाबाद आश्रम में बड़ बादशाह है जिसके सम्मुख अपना दुःख बतलाने से उसका निराकरण हो जाता है।''**

मैं १९९७ में गुरुपूर्णिमा महोत्सव पर अहमदाबाद आश्रम गया और गुरुमंत्र लिया। फिर सूरत गया। वहाँ पर बड़ बादशाह की परिक्रमा करते समय सौभाग्य से बापूजी के शुभागमन पर मेरे एक दोस्त ने मुझे बापूजी से मिलवाया तब पूज्य गुरुदेव ने कृपा करके कहा :

''अपना गुरुमंत्र जपते हुए दोनों हथेलियों को आपस में जोर-जोर से रगड़ो। जब हथेलियाँ गरम हो जायें तब 'मम चक्षु आरोग्य जाग्रय जाग्रय' इस मंत्र को बोलते हुए उन्हें फिर दोनों आँखों पर लगाना। ऐसा रोज करते रहना। आँखें ठीक हो जायेंगी।''

इस प्रयोग को मैं दिन में बार-बार करता रहा। ३५ साल के अंधेपन के कारण जिस आँख की नसें रक्त-संचारण न होने से पूरी तरह सूख चुकी थीं उस आँख में बिना किसी ऑपरेशन के ४-६ महीनों में ही रोशनी आ गई। डॉक्टरों को आश्चर्य हुआ कि ये मरी हुई आखें जिंदा कैसे हो गयीं ? लेकिन मुझे समझ में आता है कि इन मरी हुई आँखों को पुनः जीवित करने का काम परम पिता परमेश्वर के अलावा और किसीका हो ही नहीं सकता। बापूजी मेरे प्रभुजी हैं। मैं बापूजी को ईश्वर ही मानता हूँ। बापूजी **'कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थः'** हैं। अब मैं अकेले ही दिन में या रात में औरों की तरह घूम-फिर लेता हूँ। **'श्रीगुरुगीता'** भी सात बार लिख चुका हूँ।

अभी-अभी मैंने एक बड़े निदान केन्द्र बी. बी. फाउण्डेशन, २/५ लैंसडाउन रोड, कलकत्ता में 'ग्लुकोमा' (काला मोतिया) की जाँच करवाई। डॉक्टर ने दूरबीनवाले मशीन से आँख की जाँच करने के बाद कह दिया कि : ''शून्य (Nil) है, क्या देखूँ ? जाओ। दोनों आखों में रोशनी खत्म हो गयी है।''

इस पर मैंने कहा कि : ''मुझे तो आप भी

दिखते हैं और आपके कमरे के सारे उपकरण, दरवाजा, ट्युबलाइट आदि भी दिखते हैं। मैं बिना किसी अन्य व्यक्ति की सहायता के अकेले ही यहाँ आया हूँ।'' किन्तु डॉक्टर ने मेरी बात को मानने से इन्कार कर दिया। वे बोले : ''मैंने मशीन को रूपये देकर खरीदा है। तुम्हारा कहना कैसे मान लूँ ? मैं तो वही मानूँगा जो मेरा मशीन कहेगा। केवल तुझे ही प्रकाश दिखता होगा।''

मैंने कहा : ''साहब ! आपकी मशीन तो मेरे को अंधा बोल रही है लेकिन मुझे तो सब दिखता है। मैं आपकी मशीन की बात मानूँ कि मुझे जो दिखता है वह मानूँ ? मुझे तो मेरे सद्गुरुदेव भगवान की कृपा से आँखों की रोशनी वापस मिल गई है।''

- शंकरलाल मुंधडा

१४/२/८ सीतानाथ बोस लेन, सल्किया, हावड़ा, कलकत्ता।

*

पूज्य बापू के स्मरण में इतनी शक्ति !

आज से कुछ महीनों पहले की बात है। मेरे पति एक साथ कई बीमारियों के शिकार हुए। उन्हें अस्पताल में भर्ती किया गया किन्तु डॉक्टरों ने जवाब दे दिया।

हिम्मत हारकर मैं घर आई और बापूजी की तस्वीर के सामने बैठकर ज्योत जलाई और आराधना की। मैंने कहा : ''बापूजी ! आप अपना कुछ ऐसा चमत्कार दिखाएँ कि मुझे आपकी करुणा-कृपा का एहसास हो, आप पर विश्वास हो।''

कुछ समय बाद ऐसा ही हुआ। जब मैं अस्पताल वापस गई तब मेरे पति की उल्टियाँ बंद हो गई थीं जो कि १५-२० दिन से शुरू थीं। मैं तो चकित हो गई कि सिर्फ बापूजी का स्मरण करने में ही इतनी शक्ति है !

- श्रीमती विद्युत जैन,
वसई (पश्चिम), जि. थाना (मुंबई).

*

नोट : जो सज्जन बाल संस्कार केन्द्र चलाना चाहते हैं उनके मार्गदर्शन के लिए आश्रम से प्रकाशित 'बाल संस्कार केन्द्र संचालन निर्देशिका' अखिल भारतीय योग वेदान्त सेवा समिति कार्यालय, अमदावाद आश्रम में उपलब्ध है।

संस्था समाचार

दाहोद (गुज.) : दिनांक : ९ से १२ नवम्बर तक सत्संग-प्रवचन व पूनम दर्शनोत्सव संपन्न हुआ। अंतिम दिन विशाल भंडारे का आयोजन किया गया।

कार्तिक पूर्णिमा, गुरुनानक जयंती और देवदिवाली पर्व के त्रिवेणी संगम पर यहाँ अनेक प्रान्तों से आये पूनम व्रतधारी साधक-साधिकाएँ... रेलवे स्टेशन, बस स्टैण्ड, ऑटो रिक्शा स्टैण्ड आदि चहुँओर श्वेत वस्त्रधारी साधक-साधिकाएँ परस्पर ''हरि ॐ'' के उच्चारण से एक-दूसरे का अभिवादन करते हुए नज़र आ रहे थे।

इक्कीसवीं शताब्दी का प्रथम कुंभ जनवरी २००१ में प्रयाग (इलाहाबाद) में होने जा रहा है जिसकी पूर्वस्मृति यहाँ उपस्थित विशाल जनसमुदाय को देखने से सहज ही हो रही थी। इन चार दिनों में श्री नारायण साँई व श्री सुरेशानंदजी के प्रवचन हुए।

इन दिनों पूज्य गुरुदेवश्री मौन में हैं। यद्यपि मौन में ही वे व्यासपीठ पर विराजमान रहे तथापि उनकी उपस्थितिमात्र से वातावरण में अद्भुत शांति, अनुपम माधुर्य तथा आध्यात्मिकता के पवित्र स्पंदनों का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा था। उपस्थित साधक समुदाय में उठते हुए भक्तिभाव के तरंगों को देखकर ऐसा लगता था मानों, वे कह रहे हैं :

गुरुजी तुम तसल्ली न दो, सिर्फ बैठे ही रहो।
महफिल का रंग बदल जायेगा,
गिरता हुआ दिल भी सँभल जायेगा॥

कहते हैं, योगी महापुरुष केवल मुख से ही नहीं बोलते बल्कि अपनी नूरानी निगाहों से भी बहुत कुछ कह जाते हैं। दाहोद के विशाल सत्संग-पाण्डाल में उपस्थित हजारों-हजारों साधक इसके साक्षी हुए। वे पूज्यश्री की मौन उपस्थितिमात्र से अष्टसात्त्विक भावों के आनंद में सराबोर हो रहे थे।

गरीब आदिवासियों के लिए चारों दिन भंडारा चलता रहा। अंतिम दिन उनके लिए किसी महोत्सव से कम नहीं था। विगत २ वर्षों से यहाँ वर्षा न होने से अकाल की स्थिति बनी हुई है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार ८६००० से भी अधिक आदिवासी रोजी-रोटी की तलाश में अन्यत्र पलायन कर चुके हैं। ऐसी विकट परिस्थिति में जब कोई भगवान के प्यारे संत इन्हें संकट से उबारने के लिए, इनकी परेशानियों को कम करने के लिए इनके बीच पहुँच जाएँ तो हजारों आपदाग्रस्त लोगों के चेहरों पर कैसी खुशी की चमक होती है यह यहाँ प्रत्यक्ष देखा गया। पूज्य गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन में राजस्थान, मध्य प्रदेश व गुजरात के विभिन्न क्षेत्रों से आये हुए गरीब आदिवासियों को बर्तन, अन्न, कंबल, भोजन व आर्थिक सहायतास्वरूप दक्षिणा प्रदान किये गये। मिठाइयों से भरे हुए स्टील के डिब्बे भी उन्हें वितरित किये गये।

भंडारा कार्यक्रम : श्री नारायण साँई के पावन-प्रेरक सान्निध्य व मार्गदर्शन में मध्य प्रदेश के सांगपुर, आंबाखेड़ी, नवापाड़ा, पिपलिया, सारंगी, रंभापुर तथा महाराष्ट्र एवं गुजरात के मोरचुंडी, तोरंगण, कालुस्ते (घोटी) पेठगाँव, उंबरपाडा, पलसदर, धवलीदोड, गाढवी, मूलचोंड आदि स्थानों में विशाल भण्डारों का आयोजन हुआ। भण्डारों में गरीबों, आदिवासियों को वस्त्र, दक्षिणा एवं मिठाइयों से भरे स्टील के डिब्बे भी वितरित किये गये। भोजन एवं मिठाई के प्रसाद से आदिवासियों ने अपनी क्षुधा तृप्त की और साथ ही श्री नारायण साँई के सत्संग से ज्ञान-भक्ति का प्रसाद पाकर अन्तरतृप्ति का भी आनंद लिया।

कइयों ने व्यसन छोड़े, महिलाओं ने चिलम छोड़ी तो युवाओं ने 'यौवन सुरक्षा' व महिलाओं ने 'योगयात्रा-४' पुस्तक ५ बार पढ़ने का संकल्प लिया।

संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद की ओर से दाहोद व अन्य क्षेत्रों में दरिद्रनारायणों को हर माह अन्न-वितरण किया जायेगा। आम जनता व साधकों से अपील है कि इस निमित्त कोई चीज-वस्तु या रुपया-पैसा, चेक/ड्रॉफ्ट भेजने की कोशिश न करें। प्रभु के लोग-प्रभु का आश्रम। कोई कमी नहीं है। अतः फिर-फिर से प्रार्थना है कि रुपये-पैसे, चीज-वस्तु आदि भेजने का कष्ट न करें। कलकत्ता व कटक में भी सेवाकार्य जोरों से चल रहे हैं। कुछ ठग पर्चियाँ छपाकर भोले लोगों को आश्रम के नाम पर ठगते हैं। कटक में ऐसे लोग पकड़े भी गये। अतः 'ऋषि प्रसाद' के परिचित एजेन्टों से ही 'ऋषि प्रसाद' के सदस्य बनें।

बड़ौदा जिले में दिनांक : ११ अक्तूबर '९९ को चाँणसद गाँव के १८ गृहविहीन कुटुम्बियों तथा ३० सितम्बर २००० को भायली गाँव के ऐसे २० कुटुम्बियों को मकान बनाकर अर्पित किये गये। कोटा में भी आश्रम के पासवाले गाँव में घरविहीन परिवारों को मकान बनाकर अर्पित किये गये। शीघ्र बने व शीघ्र अर्पित भी हो गये। इससे पूज्य बापूजी की प्रसन्नता सेवकों को प्राप्त हुई।

*

'युवाधन सुरक्षा अभियान' द्वारा युवावर्ग में चारित्रिक उत्थान की क्रांति का सूत्रपात...

वर्त्तमान में राष्ट्र एवं समाज का मेरुदण्ड युवावर्ग पाश्चात्य 'कल्चर' के अंधानुकरण में फिल्में देखकर व अश्लील साहित्य पढ़कर स्वयं को चारित्रिक पतन की गहरी खाई में ले जा रहा है। ऐसे समय में युवावर्ग का चारित्रिक उत्थान करने तथा उसे ओजस्वी बनाने का महान् दैवी कार्य 'युवाधन सुरक्षा अभियान' के नाम से विश्ववंदनीय संत श्री आसारामजी बापू की पावन प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में देश भर की सभी श्री योग वेदान्त सेवा समितियों द्वारा किया जा रहा है।

जोधपुर, भीलवाड़ा, झुन्झुनूँ, रेलमगरा (राज.), कायथा, जौरा, औवेदुल्लागाँव, बुरहानपुर, सबलगढ़ (म. प्र.), सहारनपुर (उ. प्र.), गुरदासपुर (पंजाब), भावनगर, मोटी बाँडीबार, सुखाला (गुज.), विन्चूर (महा.) तथा दिल्ली के साधकों ने विभिन्न विद्यालयों में विद्यार्थियों को 'यौवन सुरक्षा', 'योगयात्रा-४', 'तू गुलाब होकर महक' आदि पुस्तकें बाँटीं, आश्रम के सत्साहित्य के आधार पर विभिन्न प्रतियोगितायें आयोजित कीं तथा विद्यार्थियों की सुषुप्त शक्तियों को जागृत करने के लिए उन्हें ध्यान एवं प्राणायाम आदि यौगिक प्रयोग सिखाये। इन कार्यक्रमों की आश्चर्यजनक सफलता का यह परिणाम हुआ कि रेलमगरा के कई प्रमुख विद्यालयों में प्रार्थना के समय 'हरि ॐ' का गुंजन, प्राणायाम एवं त्राटक के प्रयोग को अनिवार्य कर दिया गया है।

आज इस अभियान की समाज को कितनी आवश्यकता है इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण समाज द्वारा किये गए इसके हार्दिक स्वागत एवं बहुत कम समय में हुई इसकी व्यापकला से मिलता है। युवाधन सुरक्षा अभियान ने युवाओं, अभिभावकों, अध्यापकों, प्राचार्यों, शिक्षणाधिकारियों, क्षेत्रीय विधायकों एवं सांसदों सभी को प्रभावित किया है। सबने एक स्वर से इस दैवी कार्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और इसकी आवश्यकता जतायी है।

इस प्रकार देश भर की समितियों द्वारा इस 'युवाधन सुरक्षा अभियान' के माध्यम से युवावर्ग को संयमी, चरित्रवान् एवं महान् बनाने का दैवी कार्य युद्धस्तर पर किया जा रहा है। प्रत्येक समिति ने अपने-अपने क्षेत्र के युवाओं को उनके युवाधन की सुरक्षा के प्रति जागरूक करने का संकल्प ले रखा है। आइये, हम सभी इस अभियान से जुड़कर अपने राष्ट्र के मेरुदण्ड युवावर्ग को सुदृढ़ बनाने के पुण्य कार्य में सहभागी हों।

पूज्य बापू का मौन-दर्शन कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	स्थान	संपर्क फोन
९ से १२ दिसम्बर	सूरत (गुज.)	सत्संग पूज्य नारायण साँई और श्री सुरेशानंदजी द्वारा। पूज्य बापू की कैसेट चलेगी, उपस्थिति रहेगी।	संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।	७७२२०१, ७७२२०२.

पूर्णिमा दर्शन : १० दिसम्बर, सूरत (गुज.) में।

नोट : संत श्री आसारामजी आश्रम, सूरत में प्रतिवर्ष दिसम्बर माह में लगनेवाली ध्यान योग शिविर के स्थान पर इस वर्ष ९ से १२ दिसम्बर तक पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में मौन-दर्शन कार्यक्रम आयोजित होने जा रहा है।

हरि ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ...
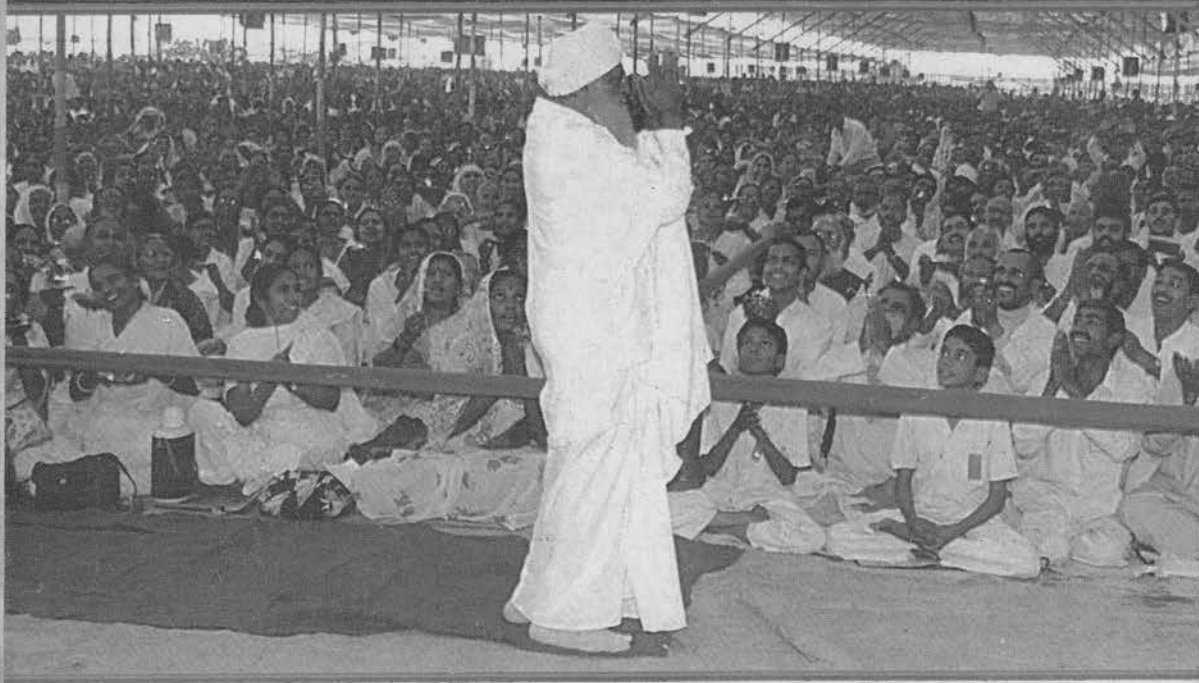
दाहोद (गुज.) में पूर्णिमा दर्शन पर पू. बापूजी तो मौन में ही रहे और हजारों पूनम दर्शन व्रतधारी नजरों से निहाल हुए... गद्‌गद् भये। साथ में हजारों आदिवासी भोजन-वस्त्र-बर्तन-दक्षिणा आदि से लाभान्वित हुए... सेवकों को सेवा का लाभ मिला।

POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH, POSTING FROM MUMBAI 9th & 10th OF EVERY MONTH, POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH
... WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2000